INTERMEDATE MICRO ECONOMICS

BAECO-102

Self Learning Material

Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY

MEERUT-250005

UTTAR PRADESH

विषय सूची

इकाई–1

1. उपभोक्ता सिद्धांत 1–21

1.1 उद्देश्य 2

1.2 प्रस्तावना 2

1.3 गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण 2

1.4 कुल तथा सीमांत उपयोगिता 3

1.5 कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में अंतर तथा संबंध 4

1.6 कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में अंतर का महत्त्व 6

1.7 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम 8

1.8 आधारभूत मान्यताएँ 8

1.9 व्याख्या 9

1.10 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम द्वारा उपभोक्ता माँग वक्र को ज्ञात करना 11

1.11 सम-सीमांत उपयोगिता का नियम

अथवा

उपयोगिता विश्लेषण एवं उपभोक्ता का संतुलन 12

1.12 नियम की आधुनिक व्याख्या 15

1.13 नियम का महत्त्व 15

1.14 नियम की आलोचनाएँ 17

1.15 उपभोक्ता की बचत : एक सचित्र विवरण 19

1.16 सारांश 20

1.17 शब्दकोश 20

1.19 अभ्यास-प्रश्न 20

1.20 संदर्भ पुस्तकें 21

इकाई–2

2. उत्पादन, लागत एवम् पूर्ण प्रतियोगिता 22–66

2.1 उद्देश्य 22

2.2 प्रस्तावना 23

2.3 उत्पादन प्रकार्य या फलन 23

2.4 उत्पादन फलन : सममात्रा - समलागत सिद्धान्त 24

2.5 समोत्पादक वक्र तथा सर्वोत्तम साधन संयोग 32

2.6 तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर का नियम 36

2.7 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम 40
2.8 लागतों की प्रकृति तथा लोच 47
2.9 लागतों का परंपरागत सिद्धांत 31
2.10 लागतों का आधुनिक सिद्धांत 59
2.11 लागतों की लोच 63

इकाई–3

3. बाजार की संरचना एवं कौशल सिद्धांत 67–92
3.1 उद्देश्य 67
3.2 प्रस्तावना 68
3.3 बाजार का अर्थ व परिभाषा 68
3.4 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार 70
3.5 एकाधिकार 77
3.6 मूल्य विभेद 80
3.7 अपूर्ण व एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता 83
3.8 अल्पाधिकार 88

इकाई–4

4. बाजार विफलता : अर्थ एवं स्त्रोत 93–107
4.1 उद्देश्य 93
4.2 प्रस्तावना 93
4.3 वस्तुओं और सेवाओं के प्रकार 95
4.4 वर्जित वस्तुएँ तथा बाजार विफलता 96
4.5 बाजार विफलता के स्त्रोत के रूप में वर्जित परंतु गैर-प्रतिद्वंद्वी वस्तुएँ 97
4.6 गैर-वर्जित वस्तुएँ और बाजार विफलता 98
4.7 बाहरी प्रभाव तथा बाजार विफलता 102
4.8 ऋणात्मक बाहरी प्रभाव 103
4.9 धनात्मक बाहरी प्रभाव 104
4.10 बाहरी प्रभाव तथा कोस सिद्धांत 105
4.11 ऊँची समझौता (या लेन-देन) लागतें 105
4.12 सारांश 106
4.13 शब्दकोश 106
4.14 अभ्यास-प्रश्न 106

इकाई–1

उपभोक्ता सिद्धांत

संरचना (Structure)

1.1 उद्देश्य (Objectives)

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

1.3 गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण (Cardinal Utility Analysis)

1.4 कुल तथा सीमांत उपयोगिता (Total and Marginal Utility)

1.5 कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में अंतर तथा संबंध
(Difference and Relation between Total Utility and Marginal Utility)

1.6 कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में अंतर का महत्त्व
(Significance of the Difference between Total Utility and Marginal Utility)

1.7 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility)

1.8 आधारभूत मान्यताएँ (Basic Assumptions)

1.9 व्याख्या (Explanation)

1.10 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम द्वारा उपभोक्ता माँग वक्र को ज्ञात करना
(Derivation of Consumer's Demand Curve through the Law of Dimining Marginal Utility)

1.11 सम-सीमांत उपयोगिता का नियम (Law of Equi-Marginal Utility)

अथवा

उपयोगिता विश्लेषण एवं उपभोक्ता का संतुलन
(Utility Analysis and Consumer's Equilibrium)

1.12 नियम की आधुनिक व्याख्या (Modern Statement of the Law)

1.13 नियम का महत्त्व (Importance of the Law)

1.14 नियम की आलोचनाएँ (Criticisms of the Law)

1.15 उपभोक्ता की बचत : एक सचित्र विवरण
(Consumer's Surplus : An Illustrative Description)

1.16 सारांश (Summary)

1.17 शब्दकोश (Keywords)

1.19 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.20 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

1.1 उद्देश्य (Objectives)

नोट

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम जानने हेतु।
- सम-सीमांत उपयोगिता का नियम समझने हेतु।
- नियम का महत्त्व जानने हेतु।
- नियम की आधुनिक व्याख्या करने हेतु।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

एक उपभोक्ता को अपनी निश्चित आय विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं पर किस प्रकार खर्च करनी चाहिए जिससे कि वह **अधिकतम संतुष्टि** प्राप्त कर सके अथवा वह **संतुलन** की स्थिति प्राप्त कर सके, अर्थशास्त्रियों ने मुख्य रूप से तीन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है–

(1) **गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण** (Cardinal Utility Analysis), (2) **क्रमवाचक उपयोगिता विश्लेषण** (Ordinal Utility Analysis) अथवा **तटस्थता वक्र विश्लेषण** (Indifference Curve Analysis), तथा (3) **प्रकट अधिमान विश्लेषण** (Revealed Preference Analysis)। इस अध्याय में गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण का अध्ययन किया गया है।

उपयोगिता क्या है?

उपयोगिता का अर्थ है किसी वस्तु की आवश्यकता संतुष्ट करने की क्षमता। उपयोगिता से अभिप्राय केवल संतुष्टि की प्राप्ति से है। एक उपयोगी वस्तु लाभदायक हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती। सिगरेट पीने वालों को सिगरेट पीने से संतुष्टि प्राप्त होती है परंतु यह नि:संदेह उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

1.3 गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण (Cardinal Utility Analysis)

19वीं शताब्दी में **ड्यूपिट** (Duipit), **गॉसेन** (Gossen), **वॉलरस** (Walras), **मेंजर** (Menger) तथा **जेवंस** (Jevons) आदि नव परंपरावादी अर्थशास्त्रियों ने गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण का प्रतिपादन, **एडम स्मिथ** (Adam Smith), **रिकार्डो** (Ricardo) व अन्य परंपरावादी अर्थशास्त्रियों आदि के विचारों की आलोचना के रूप में किया था। बीसवीं शताब्दी में **मार्शल** तथा **पीगू** ने गणनावाचक विश्लेषण को आगे विकसित किया। इस विश्लेषण के अनुसार उपयोगिता को गणनावाचक या निश्चित संख्याओं जैसे 1, 2, 3, 4 आदि में मापा जा सकता है। **गणनावाचक संख्याएँ वे निश्चित संख्याएँ हैं जिन्हें जोड़ा या घटाया जा सकता है। फिशर** ने उपयोगिता के माप को व्यक्त करने के लिए **यूटिल** (Util) मापदण्ड का प्रयोग किया है। अत: गणनावाचक उपयोगिता विश्लेषण के अनुसार यह कहा जा सकता है कि हमें एक कप चाय से 10 यूटिल और एक कप कॉफी से 5 यूटिल **उपयोगिता** प्राप्त होती है।

उपयोगिता की गणनावाचक तथा क्रमवाचक धारणाएँ

उपयोगिता की गणनावाचक धारणा के अनुसार उपयोगिता को गणनावाचक संख्याओं अर्थात् 1, 2, 3, 4 आदि के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। इसके विपरीत उपयोगिता की क्रमवाचक धारणा के अनुसार उपयोगिता को वस्तुओं के उपभोग से मिलने वाली संतुष्टि के क्रम के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। उसे निश्चित संख्याओं के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

1.4 कुल तथा सीमांत उपयोगिता (Total and Marginal Utility)

नोट

उपयोगिता के माप के आधार पर इसकी दो धारणाएँ हो सकती हैं : (1) कुल उपयोगिता तथा (2) सीमांत उपयोगिता।

1. कुल उपयोगिता (Total Utility)

किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओं के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता की इकाइयों के जोड़ को कुल उपयोगिता कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, कुल उपयोगिता किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा के उपभोग से प्राप्त संतुष्टि का माप है। यह उपभोग की गई वस्तु की कुल मात्रा का फलन है और इसे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है–

$$TU_x = f(Q_x)$$

(इसे पढ़ा जाएगा -X की कुल उपयोगिता (TU_x), X- वस्तु की मात्रा (Q_x) का फलन (f) है।)

लेफ्टविच के शब्दों में, ''कुल उपयोगिता एक वस्तु की विभिन्न मात्राओं के उपभोग से प्राप्त होने वाली कुल संतुष्टि है।'' (Total Utility refers to the entire amount of satisfaction obtained from consuming various quantities of a commodity. – **Leftwitch**)। मान लीजिए आप एक समय में **8 रसगुल्ले खा लेते हैं। इन 8 रसगुल्लों** से मिलने वाली उपयोगिता के जोड़ को कुल उपयोगिता कहा जाएगा।

2. सीमांत उपयोगिता (Marginal Utility)

सीमांत उपयोगिता की धारणा का विकास प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **जेवंस** ने किया था। इसे **अतिरिक्त उपयोगिता** (Additional Utility) भी कहा जाता है। किसी वस्तु की एक अधिक या एक कम इकाई के प्रयोग करने से कुल उपयोगिता में जो परिवर्तन होता है, उसे सीमांत उपयोगिता कहा जाता है। मान लीजिए पहली रोटी खाने से आपको 15 यूटिल उपयोगिता प्राप्त होती है, दूसरी रोटी खाने के फलस्वरूप दोनों रोटियों से मिलने वाली कुल उपयोगिता 25 यूटिल हो जाती है। इसका अर्थ हुआ कि दूसरी रोटी के उपभोग से कुल उपयोगिता में 10 यूटिल (25 – 15) की वृद्धि हुई। अत: दूसरी रोटी की सीमांत उपयोगिता 10 यूटिल होगी।

लिप्सी के शब्दों में, **''वस्तु की एक अधिक इकाई के उपभोग करने से कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है वह सीमांत उपयोगिता कहलाती है।''** (Marginal utility is the addition made to the total utility by consuming one more unit of commodity. **—Lipsey**)

बोल्डिंग के अनुसार, **''सीमांत उपयोगिता कुल उपयोगिता में होने वाली वह वृद्धि है जो एक अधिक इकाई के उपभोग करने के कारण प्राप्त होती है।''** (The marginal utility is the increase in total utility which results from a unit increase in consumption. **—Boulding**)

सीमांत उपयोगिता को निम्नलिखित समीकरण की सहायता से मापा जा सकता है:

$$MU_{nth} = TU_n - TU_{n-1} \text{ Or } MU = \frac{\Delta TU}{\Delta Q}$$

(यहाँ MU_{nth} = nth इकाई की सीमांत उपयोगिता; TU_n = n इकाइयों की कुल उपयोगिता; TU_{n-1} = n–1 इकाई की कुल उपयोगिता। ΔTU = कुल उपयोगिता में परिवर्तन; ΔQ = वस्तु की मात्रा में परिवर्तन)

सीमांत उपयोगिता (*i*) **धनात्मक**, (*ii*) **शून्य** तथा (*iii*) **ऋणात्मक** हो सकती है।

(*i*) धनात्मक सीमांत उपयोगिता (Positive Marginal Utility)–किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करने से यदि कुल उपयोगिता बढ़ती जाती है, तो इन इकाइयों की सीमांत उपयोगिता धनात्मक कहलाएगी। मान लीजिए अपनी भूख को संतुष्ट करने के लिए आप रोटी खाते हैं। पहली रोटी से आप 8 इकाई तथा दूसरी रोटी से 6 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार दो रोटियों से 8 + 6 = 14 इकाइयाँ/यूटिल कुल उपयोगिता प्राप्त करते हैं। अत: रोटी की अतिरिक्त इकाइयों के खाने के फलस्वरूप कुल उपयोगिता बढ़ती जा रही है। उपरोक्त उदाहरण में दूसरी रोटी से प्राप्त सीमांत उपयोगिता को धनात्मक उपयोगिता कहा जाएगा।

नोट

(ii) **शून्य सीमांत उपयोगिता** (Zero Marginal Utility)–यदि वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उपभोग करने से कुल उपयोगिता में कोई परिवर्तन नहीं आता तो वस्तु की इस इकाई की उपयोगिता शून्य होगी। **उपभोग के इसी स्तर पर कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है।** जहाँ तक उपभोक्ता की संतुष्टि का संबंध है, यह **पूर्ण संतुष्टि या पूर्ण तृप्ति का बिंदु** (Saturation Point) कहलाएगा। मान लीजिए 4 रोटियों के खाने से कुल उपयोगिता 20 इकाई/यूटिल प्राप्त होती है तथा पाँचवीं रोटी के खाने से कुल उपयोगिता में कोई परिवर्तन नहीं आता, वह 20 ही रहती है, तब पाँचवीं रोटी से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता शून्य होगी।

(iii) **ऋणात्मक सीमांत उपयोगिता** (Negative Marginal Utility)–किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई का उपभोग करने से यदि कुल उपयोगिता घट जाती है, तो इस इकाई की सीमांत उपयोगिता ऋणात्मक कहलाएगी। पाँच रोटियों के उपभोग से पूर्ण संतुष्टि अथवा तृप्ति बिंदु प्राप्त करने के बाद यदि उपभोक्ता को छठी रोटी खाने के लिए मजबूर होना पड़ता है तब यह उसकी पाचन शक्ति को खराब कर देगी। इसके परिणामस्वरूप कुल उपयोगिता कम होकर 18 हो जाएगी। इसका अर्थ हुआ कि छठी रोटी की सीमांत उपयोगिता $(18-20) = -2$ होगी, यह एक ऋणात्मक संख्या है।

कुल उपयोगिता सीमांत उपयोगिता से कैसे भिन्न है?

कुल उपयोगिता किसी वस्तु की सभी इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का जोड़ है। इसके विपरीत सीमांत उपयोगिता किसी वस्तु की एक अधिक इकाई का प्रयोग करने से प्राप्त अतिरिक्त इकाई है। अतएव

$$TU = \Sigma MU$$

$$MU_{nth} = TU_n - TU_{n-1}$$

नोट्स सीमांत उपयोगिता कुल उपयोगिता में होने वाली वह वृद्धि है जो एक अधिक इकाई के उपभोग करने के कारण प्राप्त होती है।

1.5 कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में अंतर तथा संबंध (Difference and Relation between Total Utility and Marginal Utility)

नव परंपरावादी अर्थशास्त्री **जेवंस** (Jevons) ने सबसे पहले कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता के संबंध और अंतर के महत्त्व की व्याख्या की थी। कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता के अंतर तथा संबंध को तालिका 1 तथा चित्र 1 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका 1. कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में संबंध

मात्रा (इकाई)	*कुल उपयोगिता*	*सीमांत उपयोगिता*	*विवरण*
1	8	8 − 0 = 8	धनात्मक सीमांत उपयोगिता कुल उपयोगिता बढ़ रही है।
2	14	14 − 8 = 6	
3	18	18 − 14 = 4	
4	20	20 − 18 = 2	
5	20	20 − 20 = 0	शून्य सीमांत उपयोगिता कुल उपयोगिता अधिकतम।
6	18	18 − 20 = −2	सीमांत उपयोगिता ऋणात्मक कुल उपयोगिता घट रही है।

तालिका 1 से ज्ञात होता है कि कुल उपयोगिता का अनुमान किसी वस्तु की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त सीमांत उपयोगिता के जोड़ से लगाया जाता है।

(*i*) $$TU = \sum MU$$

(यहाँ TU = कुल उपयोगिता; Σ = सिगमा यह जोड़ का चिह्न है; MU = सीमांत उपयोगिता अर्थात् कुल उपयोगिता = सीमांत उपयोगिताओं का जोड़।)

$$TU_6 = MU_{(1st)} + MU_{(2nd)} + MU_{(3rd)} + MU_{(4th)} + MU_{(5th)} + MU_{(6th)}$$
$$= 8 + 6 + 4 + 2 + 0 + (-2) = 18$$

इसके विपरीत सीमांत उपयोगिता का अनुमान कुल उपयोगिता में होने वाले परिवर्तन को वस्तु की मात्रा में होने वाले परिवर्तन से भाग देकर लगाया जाता है।

(*ii*) $$MU = \frac{\Delta TU}{\Delta Q} \text{ या } MU_{nth} = TU_n - TU_{n-1}$$

(यहाँ MU_{nth} = nth इकाई की सीमांत उपयोगिता; TU_n = सभी n इकाइयों के उपभोग की कुल उपयोगिता, $TU_{n-1} = n - 1$ इकाइयों की कुल उपयोगिता।)

MU = सीमांत उपयोगिता; ΔTU = कुल उपयोगिता में परिवर्तन; ΔQ = वस्तु के उपयोग में परिवर्तन; Δ = परिवर्तन का चिह्न है।

उदाहरण के लिए

$$\text{MU of 4th Unit} = \text{TU of 4th unit} - \text{TU of 3rd unit} = 20 - 18 = 2$$

या $$\frac{\Delta TU}{\Delta Q} = \frac{\text{TU of 4th unit} - \text{TU of 3rd unit}}{4-3} = \frac{20-18}{1} = \frac{2}{1} = 2$$

(*iii*) किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का जैसे-जैसे अधिक उपभोग किया जाता है, उनसे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता घटती जाती है। परंतु कुल उपयोगिता वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के उपभोग करने से तब तक बढ़ती रहती है जब तक वह बिंदु नहीं आ जाता कि जिस पर सीमांत उपयोगिता शून्य हो जाती है।

(*iv*) कुल उपयोगिता सामान्यत: **धनात्मक** रहती है जबकि सीमांत उपयोगिता **धनात्मक, शून्य** या **ऋणात्मक** भी हो सकती है।

(*v*) जब सीमांत उपयोगिता शून्य होती है तब कुल उपयोगिता अधिकतम होती है।

(*vi*) सीमांत उपयोगिता ही कुल उपयोगिता में परिवर्तन की दर को निर्धारित करती है।

कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता के संबंध को चित्र 1.1 द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र के भाग (A) में तथा भाग (B) में OX-अक्ष पर वस्तु की इकाइयाँ और OY-अक्ष पर उपयोगिता दिखाई गई है। चित्र 1.1(A) में TU वक्र कुल उपयोगिता को प्रकट कर रही है। यह वक्र F बिंदु तक ऊपर की ओर उठ रहा है। इसका अर्थ है कि वस्तु की 4 इकाइयों के उपभोग तक कुल उपयोगिता बढ़ रही है। बिंदु F से G तक कुल उपयोगिता स्थिर है। इसका अर्थ है कि पाँचवीं इकाई का उपभोग करने से कुल उपयोगिता में वृद्धि नहीं हुई है। दोनों F और G बिंदु TU वक्र की अधिकतम ऊँचाई को प्रकट करते हैं। पाँचवीं इकाई पर बिंदु G अधिकतम कुल उपयोगिता को प्रकट करता है। यह पूर्ण तृप्ति या संतुष्टि का बिंदु है। बिंदु G के बाद TU वक्र नीचे की ओर झुकना शुरू हो जाता है, इससे प्रकट होता है कि वस्तु की छठी इकाई से ऋणात्मक सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो रही है और कुल उपयोगिता घटना शुरू हो जाती है।

नोट

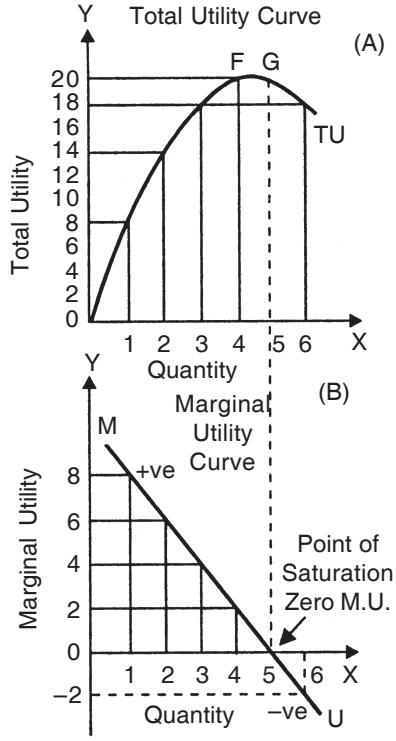

चित्र 1.1

चित्र 1.1 (B) में MU वक्र सीमांत उपयोगिता को प्रकट कर रहा है। यह वक्र बाएँ से दाएँ नीचे की ओर झुका हुआ है। इसका अर्थ है कि अतिरिक्त इकाइयों से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता घटती जाती है। वस्तु की चौथी इकाई तक सीमांत उपयोगिता घट रही है परंतु कुल उपयोगिता बढ़ रही है। इससे सिद्ध होता है कि वस्तु की चौथी इकाई तक सीमांत उपयोगिता धनात्मक है। पाँचवीं इकाई पर वह बिंदु जहाँ MU वक्र OX अक्ष को छू रहा है, शून्य सीमांत उपयोगिता को प्रकट करता है। इस स्थिति में कुल उपयोगिता अधिकतम है। पाँचवीं इकाई के बाद MU वक्र OX- अक्ष को काटकर नीचे की ओर बढ़ने लगता है। इससे प्रकट होता है कि छठी इकाई से ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होगी। इस स्थिति में कुल उपयोगिता घटना शुरू हो जाती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरिए (Fill in the blanks)–

1. उपयोगिता से अभिप्राय के ..... की प्राप्ति से है।
2. फिशर ने उपयोगिता के माप को व्यक्त करने के लिए ..... मापदंड का प्रयोग किया है।
3. सीमांत उपयोगिता को ..... उपयोगिता भी कहा जाता है।

1.6 कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में अंतर का महत्त्व (Significance of the Difference between Total Utility and Marginal Utility)

कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता के अंतर का निम्नलिखित व्यावहारिक महत्त्व है–

1. **मूल्य का विरोधाभास अथवा हीरा-पानी विरोधाभास** (Paradox of Value or the Diamond-Water Paradox)–कई अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता थी कि किसी वस्तु की कीमत उससे प्राप्त होने वाली

नोट

कुल उपयोगिता के बराबर होती है। अत: जिन वस्तुओं के उपभोग से कुल उपयोगिता अधिक प्राप्त होती है, उनका मूल्य अधिक होना चाहिए तथा जिन वस्तुओं से कुल उपयोगिता कम प्राप्त होती है, उनका मूल्य कम होना चाहिए। परंतु वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं पाया जाता। **पानी के उपभोग से प्राप्त कुल उपयोगिता हीरों के उपभोग से प्राप्त कुल उपयोगिता से अधिक होती है,** परंतु पानी की कीमत हीरों की कीमत से बहुत कम होती है। इस स्थिति को ही **मूल्य का विरोधाभास** अथवा **हीरा-पानी विरोधाभास** कहा जाता है। **एडम स्मिथ** ने ही हीरा-पानी विरोधाभास को विकसित किया था। जब उसने यह देखा कि पानी संसार के सबसे उपयोगी पदार्थों में से एक है; हमारा जीवित रहना इसी पर निर्भर करता है, परंतु पानी फिर भी सस्ता है। इसकी तुलना में हीरे, जो केवल सजावट की चीज हैं और जिनका व्यावहारिक महत्त्व भी कम है, बहुत अधिक महँगे हैं। **जेवंस** ने इस विरोधाभास की व्याख्या कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता के अंतर द्वारा की है। उसके अनुसार **एडम स्मिथ** एक वस्तु की उस सापेक्ष दुर्लभता के महत्त्व को भूल गया जो उस वस्तु के प्रयोग मूल्य या सीमांत उपयोगिता के अनिर्धारण में सहायक होता है। **एडम स्मिथ** ने एक हीरे की पानी की कुल पूर्ति से तुलना की है। यदि वह एक हीरे के टुकड़े की सीमांत उपयोगिता की तुलना पानी के एक गैलन की सीमांत उपयोगिता से करता है, जबकि और पानी उपलब्ध नहीं हो तो, यह विरोधाभास लुप्त या समाप्त हो जाता। **किसी वस्तु की कीमत, कुल उपयोगिता के स्थान पर, सीमांत उपयोगिता द्वारा निर्धारित होती है।** पानी बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है, इसलिए इसकी कुल उपयोगिता शीघ्र ही पूर्ण संतुष्टि बिंदु पर पहुँच जाती है। अन्य शब्दों में, इसकी सीमांत उपयोगिता शीघ्र शून्य हो जाती है। इसलिए बेशक पानी से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता काफी अधिक होती है क्योंकि इसका अधिक मात्रा में उपभोग किया जाता है, फिर भी इसकी सीमांत उपयोगिता बहुत कम होती है, इसीलिए पानी की कीमत प्राय: शून्य होती है। दूसरी ओर हीरों की उपलब्धता बहुत कम होती है, इसलिए उनकी कुल उपयोगिता कभी भी **पूर्ण संतुष्टि बिंदु** तक नहीं पहुंच पाती। हीरों से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता बेशक कम होती है क्योंकि उपभोक्ता सापेक्षतया इन्हें कम खरीदते हैं फिर भी हीरों की सीमांत उपयोगिता ऊँची व धनात्मक रहती है। इसी कारण हीरों की कीमत बहुत अधिक होती है।

एक उपभोक्ता किसी वस्तु की जो कीमत देना चाहता है, वह उसकी कुल उपयोगिता के बराबर नहीं होती बल्कि सीमांत उपयोगिता के बराबर होती है। चूँकि किसी वस्तु का जैसे-जैसे उपभोग बढ़ता जाता है, उससे प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता कम होती जाती है। इसलिए उपभोक्ता वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए जिसे वह खरीदना चाहता है, पहली इकाई की तुलना में कम कीमत देना चाहता है।

2. **उपभोक्ता की बचत** (Consumer's Surplus)—कई बार एक उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए उसकी वास्तविक कीमत से बहुत अधिक कीमत देने के लिए तैयार एवं इच्छुक होता है, इन दोनों कीमतों के अंतर को उपभोक्ता की बचत कहा जाता है। उपभोक्ता उस कुल उपयोगिता के बराबर कीमत देने के लिए तैयार होता है जो वह वस्तु की सभी इकाइयों से प्राप्त करता है परंतु वास्तव में वह वस्तु की सीमांत इकाई की उपयोगिता या सीमांत उपयोगिता के बराबर कीमत देता है। सीमांत इकाई से अभिप्राय वस्तु की उस अतिरिक्त इकाई से है जो उपभोक्ता खरीदने के लिए तैयार होता है। **इस अतिरिक्त इकाई से पहले उपभोक्ता द्वारा खरीदी गई प्रत्येक इकाई (इन्हें अंतर-सीमांत इकाइयाँ कहा जाता है) की सीमांत उपयोगिता अतिरिक्त इकाई की सीमांत उपयोगिता से अधिक होती है।** इन सभी इकाइयों की सीमांत उपयोगिता के जोड़ को कुल उपयोगिता कहते हैं। परंतु कीमत के सीमांत उपयोगिता के बराबर होने के कारण, उपभोक्ता द्वारा दी जाने वाली मुद्रा की वास्तविक राशि सीमांत उपयोगिता (कीमत) तथा खरीदी गई इकाइयों की संख्या की गुणा के बराबर होती है। अतएव वस्तु की इकाइयों की एक दी हुई संख्या की कुल उपयोगिता के आधार पर दी जाने वाली मुद्रा की राशि तथा उसी वस्तु की इकाइयों की समान संख्या की सीमांत उपयोगिता के आधार पर दी गई वास्तविक मुद्रा-राशि में अंतर होगा। **इस अंतर या आधिक्य को ही उपभोक्ता की बचत कहा जाता है। अत: उपभोक्ता की बचत की धारणा का आधार कुल उपयोगिता तथा सीमांत उपयोगिता में पाया जाने वाला अंतर है।**

1.7 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility)

नोट

सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम उपयोगिता विश्लेषण की आधारशिला है। इस नियम का अपने प्रतिदिन के जीवन में हम सब अनुभव करते हैं। किसी निश्चित समय अवधि में यदि आप पेन खरीदना चाहते हैं तब जैसे-जैसे आपके पास पेनों की संख्या बढ़ती जाएगी तब प्रत्येक अगले पेन से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता कम होती जाएगी। मनुष्य के जीवन की इस वास्तविकता को ही अर्थशास्त्र में सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम कहा जाता है। **अतः सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम यह बतलाता है कि यदि अन्य बातें समान रहें, जब एक निश्चित समय में किसी वस्तु का अधिक उपयोग किया जाता है तो उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता घटती जाती है।**

उन्नीसवीं शताब्दी के कई अर्थशास्त्री जैसे **बेंथम, गॉसेन, जेवंस, मेंजर** और **वॉलरस** इस नियम के प्रतिपादन के लिए उत्तरदायी हैं। **जेवंस** के अनुसार यह नियम **वेबर-फैचनर** (Weber-Fechner) के मनोवैज्ञानिक नियम पर आधारित है, जिसके अनुसार किसी वस्तु की मात्रा बढ़ने पर उसकी अतिरिक्त इकाइयों का महत्त्व कम होता जाता है। **बोल्डिंग** इस नियम को "Law of Eventually Diminishing Marginal Utility" के नाम से पुकारते हैं। इसे **गॉसेन का प्रथम नियम** (Gossen's First Law) भी कहा जाता है।

1. **मार्शल** के अनुसार, **''एक व्यक्ति के पास किसी वस्तु की जितनी मात्रा हो उसमें निश्चित वृद्धि के फलस्वरूप उसको जो अतिरिक्त उपयोगिता प्राप्त होती है वह उसकी मात्रा में होने वाली प्रत्येक वृद्धि से कम होती जाती है।''** (The additional benefit which a person derives from a given stock of a thing diminishes with every increase in the stock that he already has. — **Marshall**)
2. **सैम्युलसन** के शब्दों में, **''सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम बतलाता है कि अन्य बातें समान रहने पर जैसे-जैसे किसी वस्तु की उपभोग की मात्रा बढ़ती है, उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता कम होने की प्रवृत्ति प्रकट होती है।''** (The law of diminishing marginal utility states that *ceteris paribus* as the amount of a good consumed increases, the marginal utility of that good diminishes. — **Samuelson**)

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि **सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार किसी निश्चित समय में जब किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता, अन्य बातें समान रहने पर, पिछली इकाई की तुलना में कम होती जाती है।**

क्या आप जानते हैं कुल उपयोगिता कभी भी पूर्ण संतुष्टि बिंदु तक नहीं पहुँच पाती।

1.8 आधारभूत मान्यताएँ (Basic Assumptions)

इस नियम की तीन आधारभूत मान्यताएँ निम्नलिखित हैं–

1. वस्तु का उपभोग उचित मात्रा में किया जाता है जैसे एक कप चाय, या एक गिलास पानी आदि।
2. वस्तु का उपभोग निरंतर होता है।
3. प्रत्येक वस्तु की सीमांत उपयोगिता दूसरी वस्तु से स्वतंत्र है।

1.9 व्याख्या (Explanation)

नोट

इस नियम की व्याख्या तालिका 2 तथा चित्र 1.2 से की जा सकती है–

तालिका 2. घटती सीमांत उपयोगिता

उपभोग की गई आईसक्रीम *(Ice Cream Consumed)*	*सीमांत उपयोगिता* *(Marginal Utility)*
पहली (First)	4
दूसरी (Second)	3
तीसरी (Third)	2
चौथी (Fourth)	1
पाँचवीं (Fifth)	0
छठी (Sixth)	−1

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि आईसक्रीम के पहले कप से 4 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। दूसरे कप से 3 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है, तीसरे कप से और कम 2 इकाई और चौथे कप से केवल। इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। इस अवस्था में उपभोक्ता की आवश्यकता पूर्णतया संतुष्ट हो जाती है। इसलिए आईसक्रीम का पाँचवाँ कप शून्य सीमांत उपयोगिता प्रदान करता है। यदि उसे छठा कप लेने पर मज़बूर किया जाता है तो शायद उसकी पाचनशक्ति बिगड़ जाए। अन्य शब्दों में, उसे ऋणात्मक (−) उपयोगिता प्राप्त होती है अर्थात् छठे कप से उसे असंतुष्टि मिलती है।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि आईसक्रीम की इकाइयों का जैसे-जैसे अधिक मात्रा में उपभोग किया जाता है प्रत्येक अगली इकाई से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता कम होती जाती है।

चित्र 1.2 में OX- अक्ष पर आईसक्रीम की इकाइयों (मात्रा) और OY- अक्ष पर सीमांत उपयोगिता को दिखाया गया है। AB सीमांत उपयोगिता वक्र है, इसका ढलान बाएँ से दाएँ नीचे की ओर (ऋणात्मक) है। इस वक्र से यह ज्ञात है कि आईसक्रीम के प्रथम कप से 4 इकाइयाँ, दूसरे से 3 इकाइयाँ, तीसरे से 2 इकाइयाँ और चौथे से 1 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त कर रही है। आईसक्रीम के पाँचवें कप से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता शून्य है। इसलिए AB वक्र OX- अक्ष को 'C' बिंदु पर छू रही है जो आईसक्रीम के पाँचवें कप को दर्शा रहा है। आईसक्रीम के छठे कप से ऋणात्मक (−1) सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है और इसलिए AB वक्र OX- अक्ष से नीचे चला जाता है।

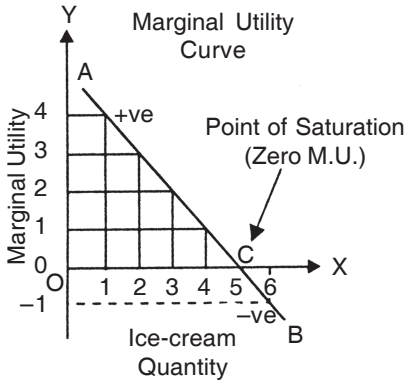

चित्र 1.2

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)–

नोट

4. ..... ने हीरा-पानी विरोधाभास को विकसित किया था।

   (अ) एडम स्मिथ (ब) सैम्युलसन (स) मार्शल (द) बोल्डिंग

5. किसी वस्तु की कीमत, कुल उपयोगिता के स्थान पर, ... उपयोगिता द्वारा निर्धारित होती है।

   (अ) सीमांत (ब) कुल (स) अंतर (द) बचत

6. सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम उपयोगिता विश्लेषण की है–

   (अ) आधारशिला (ब) बचत (स) आय (द) कीमत

7. प्रत्येक वस्तु की सीमांत उपयोगिता दूसरी वस्तु से है–

   (अ) परतंत्र (ब) बड़ी (स) स्वतंत्र (द) छोटी।

अपवाद (Exceptions)

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के निम्नलिखित अपवाद हैं। इसका अर्थ यह है कि यह नियम निम्नलिखित स्थितियों में लागू नहीं होता। परंतु इन अपवादों का अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि ये अपवाद वास्तविक नहीं हैं।

1. **दुर्लभ और विचित्र वस्तुएँ** (Curious and Rare Things)–यह कहा जाता है कि दुर्लभ तथा विचित्र वस्तुओं के संबंध में यह नियम लागू नहीं होता। जो व्यक्ति पुराने दुर्लभ सिक्के, डाक टिकट या दुर्लभ चित्र आदि एकत्रित करते हैं उनके पास इन वस्तुओं का स्टॉक जितना बढ़ता जाता है उतनी ही उनकी सीमांत उपयोगिता बढ़ती जाती है। ये इनकी और अधिक मात्रा प्राप्त करना चाहते हैं। परंतु यह अपवाद सच्चा नहीं है। यदि टिकट एकत्रित करने वाले के पास एक ही प्रकार के टिकटों की संख्या बढ़ जाए तो अतिरिक्त टिकटों की सीमांत उपयोगिता अवश्य ही कम होगी।

2. **कंजूस व्यक्ति** (Misers)–यह कहा जाता है कि यह नियम कंजूस व्यक्तियों पर लागू नहीं होता। उनके पास जितना धन बढ़ता जाता है, उतना ही वे और अधिक धन प्राप्त करना चाहते हैं। परंतु **मेयर्स** (Myers) के अनुसार यह अपवाद भी सही नहीं है। इसका कारण यह है कि एक कंजूस व्यक्ति भोजन तथा कपड़े के लिए जो मुद्रा खर्च करता है वह मुद्रा की उस राशि को सोने-चाँदी पर खर्च नहीं कर पाता। इससे सिद्ध होता है कि कंजूस व्यक्ति के लिए भी, जिसके पास सोना-चाँदी अधिक होता है, सोने-चाँदी की उपयोगिता कम हो जाती है तथा भोजन आदि की उपयोगिता, जो उसके पास कम है, बढ़ जाती है।

3. **अच्छी पुस्तक या कविता** (Good Book or Poem)–यह कहा जाता है कि अच्छी पुस्तकें, मधुर संगीत या सुंदर कविता को बार-बार पढ़ने या सुनने से पहले से अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। इसलिए इन्हें यह नियम का अपवाद माना गया है। परंतु यह अपवाद भी सही नहीं है। यह तो संभव है कि किसी सीमा तक एक पुस्तक या गीत को बार-बार पढ़ने या सुनने से उसकी उपयोगिता बढ़ सकती है, परंतु एक ही समय में बार-बार एक ही पुस्तक को पढ़ने या सुनने पर मन भर जाता है। इसके फलस्वरूप इनकी सीमांत उपयोगिता कम होने लगती है।

4. **शराबी व्यक्ति** (Drunkards)–यह कहा जाता है कि जब कोई शराबी व्यक्ति नशा करने के लिए शराब पीता है तो जैसे-जैसे वह अधिक शराब पीता जाता है शराब की और अधिक माँग करता है। इस प्रकार शराबी व्यक्ति इस नियम का अपवाद माना जाता है। परंतु एक शराबी के लिए भी एक ऐसी अवस्था आती है जब वह अपना होश खो बैठता है तथा उसे अत्यधिक शराब के हानिकारक प्रभाव को स्वीकार करना पड़ता है। इस प्रकार अंततः यह नियम उस पर भी लागू होता है।

5. **प्रारंभिक इकाइयाँ** (Initial Units)–जब किसी वस्तु की प्रारंभिक इकाइयों को उपयुक्त मात्रा से कम मात्रा में प्रयोग किया जाता है तो अतिरिक्त इकाइयों से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता बढ़ने लगती है। जैसे **बेन्हम**

(Benham) के अनुसार यदि हम एक अँगीठी में एक-एक कोयला जलाएँगे तो कोयले की सीमांत उपयोगिता बढ़ती जाएगी। इसलिए इन प्रारंभिक इकाइयों को इस नियम का अपवाद माना जाता है। परंतु यह सही नहीं है। हम जैसे ही उनकी पर्याप्त मात्रा का प्रयोग करने लगेंगे, इनकी अतिरिक्त इकाइयों की सीमांत उपयोगिता कम हो जाएगी।

नोट

संक्षेप में, **टॉजिग ने ठीक कहा है कि सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम की प्रवृत्ति इतनी व्यापक है कि इस नियम को सर्वव्यापी कहना गलत नहीं होगा।**

1.10 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम द्वारा उपभोक्ता माँग वक्र को ज्ञात करना (Derivation of Consumer's Demand Curve through the Law of Diminishing Marginal Utility)

किसी वस्तु के लिए उपभोक्ता जो कीमत देता है वह उसकी सीमांत उपयोगिता के बराबर होती है। सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के अनुसार एक उपभोक्ता किसी वस्तु की जितनी अधिक इकाइयाँ खरीदता जाता है उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता कम होती जाती है। इसलिए उपभोक्ता उस वस्तु की अधिक इकाइयाँ तब ही खरीदेगा जब उसकी कीमत कम हो जाएगी। **जब सीमांत उपयोगिता को मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाता है, तो ऐसी अवस्था में सीमांत उपयोगिता वक्र का धनात्मक भाग ही माँग वक्र हो जाएगा। लिप्सी** के शब्दों में, **''जब किसी एक वस्तु के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं के उपभोग को स्थिर रखा जाता है, तब परिवर्तनशील वस्तु की सीमांत उपयोगिता अनुसूची वस्तु की माँग वक्र होती है।''** (When the consumption of all but one product is held constant, the marginal utility schedule for the variable product is the product's demand curve. **—Lipsey**)

जब सीमांत उपयोगिता को OY-अक्ष पर प्रकट किया जाता है तब जो वक्र प्राप्त होगा वह सीमांत उपयोगिता वक्र होगा। इसके विपरीत यदि OY-अक्ष पर कीमत को दर्शाया जाता है जब जो वक्र प्राप्त होगा वह माँग वक्र होगा, इसको चित्र 1.3(A) तथा 1.3(B) में दर्शाया गया है।

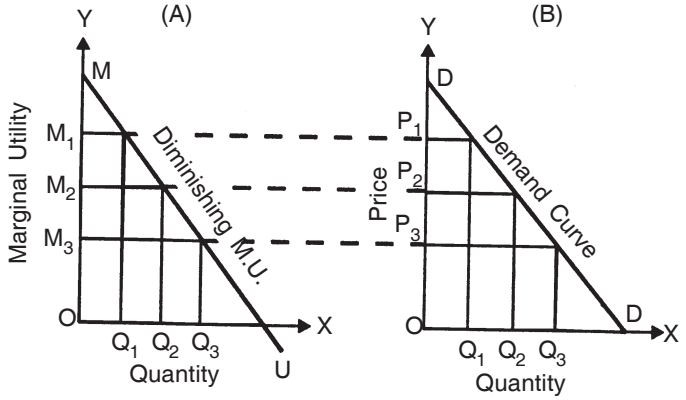

चित्र 1.3

चित्र 1.3(A) सीमांत उपयोगिता वक्र और 1.3(B) माँग वक्र को प्रकट कर रहा है। यह DD माँग वक्र MU वक्र की सहायता से प्राप्त की गई है।

नोट

1.11 सम-सीमांत उपयोगिता का नियम (Law of Equi-Marginal Utility)

अथवा

उपयोगिता विश्लेषण एवं उपभोक्ता का संतुलन (Utility Analysis and Consumer's Equilibrium)

सम-सीमांत उपयोगिता के नियम के अनुसार एक उपभोक्ता अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं पर खर्च करके अधिकतम संतुष्टि या संतुलन की स्थिति प्राप्त कर सकता है। उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति वह अवस्था है जिसमें एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर रहा है। अर्थशास्त्र में उपभोक्ता के व्यय से संबंधित इस नियम की व्याख्या सबसे पहले 19वीं शताब्दी के फ्रेंच इंजीनियर **गॉसेन** ने की थी। इसलिए इसे **गॉसेन का द्वितीय नियम** (Second Law of Gossen) भी कहा जाता है। **डॉ. मार्शल** ने इस नियम को **''सम-सीमांत उपयोगिता का नियम''** कहा है। **इस नियम के अनुसार एक उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिए विभिन्न वस्तुओं पर अपनी सीमित आय इस प्रकार खर्च करनी चाहिए कि प्रत्येक वस्तु पर खर्च किए जाने वाले अंतिम रुपये से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर हो।** अर्थशास्त्रियों ने इस नियम के विभिन्न नाम दिए हैं। इस नियम को **लेफ्टविच** ने **''उपभोक्ता की संतुष्टि के अधिकतमकरण का सामान्य सिद्धांत''** (The General Principle for Maximisation of Consumer's Satisfaction) का नाम दिया है। सरल शब्दों में इसे **''अधिकतम संतुष्टि का नियम''** (Law of Maximum Satisfaction) कहा जाता है क्योंकि इस नियम के अनुसार अपनी आय खर्च करने के फलस्वरूप उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होगी। **हिब्डन** ने इसे **''विचारवान उपभोक्ता का नियम''** (Law of Rational Consumer) कहा है, एक विचारवान उपभोक्ता वह है जो अधिक संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। अत: एक विचारवान उपभोक्ता अपना व्यय इस नियम के अनुसार ही करेगा। इस नियम को **'प्रतिस्थापन का नियम'** (Law of Substitution) भी कहा जाता है क्योंकि इस नियम के अनुसार एक उपभोक्ता अधिक उपयोगिता वाली वस्तु का कम उपयोगिता वाली वस्तु के लिए तब तक प्रतिस्थापन करेगा जब तक दोनों से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर नहीं हो जाती। **लार्ड रॉबिंस** के अनुसार यह **'अर्थशास्त्र का नियम'** (Law of Economics) है, क्योंकि यह नियम अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र जैसे, उत्पादन, उपभोग, विनियम, वितरण तथा राजस्व पर लागू होता है।

मार्शल के अनुसार, **''यदि किसी व्यक्ति के पास ऐसी वस्तु है जिसे वह विभिन्न प्रकार से प्रयोग कर सकता है तो वह इसका अनेक प्रयोगों में इस प्रकार वितरण करेगा कि इसकी सीमांत उपयोगिता प्रत्येक में समान हो।''** (If a person has a thing which he can put to several uses he will distribute it among these uses in such a way that it has the same marginal utility in all.

—Marshall)

मैकौनल के शब्दों में, **''सम-सीमांत उपयोगिता नियम बतलाता है कि उपयोगिता अधिकतम करने के लिए उपभोक्ताओं द्वारा अपनी सीमित आय का बँटवारा विभिन्न वस्तुओं में इस प्रकार किया जाना चाहिए कि सभी वस्तुओं की अंतिम इकाई के उपभोग से प्रति डॉलर समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो।''** (The law of equi-marginal utility states that to maximise utility, consumers must allocate their limited income, among goods in such a way that marginal utilities per doller of demand from the last unit consumed are equal among all good. **—McConnell)**

सैम्युलसन के अनुसार, **''एक उपभोक्ता उस समय अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है जब सब वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताओं तथा उनकी कीमतों का अनुपात बराबर होता है।''** (A consumer gets maximum satisfaction when the ratio of marginal utilities of all commodities and their prices is equal. **—Samuelson)**

$$\frac{MU_1}{P_1} = \frac{MU_2}{P_2} = \frac{MU_3}{P_3}$$

यदि वस्तुओं की कीमतें समान हैं तो उपभोक्ता की अधिकतम संतुष्टि को निम्न समीकरण द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

$$MU_1 = MU_2 = MU_3$$

उपरोक्त समीकरण में $MU_1 = MU_2 = MU_3$ पहली, दूसरी और तीसरी वस्तु की सीमांत उपयोगिता है। P_1, P_2, P_3 पहली, दूसरी तथा तीसरी वस्तु की कीमत है।

नोट

मान्यताएँ (Assumptions)

सम सीमांत उपयोगिता का नियम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

(1) उपयोगिता को गणनावाचक संख्या में मापा जा सकता है।

(2) उपभोक्ता विवेकशील है अर्थात् वह अपनी आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है।

(3) उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है।

(4) मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर रहती है।

(5) वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं।

(6) वस्तु को छोटी इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उपभोक्ता अपनी आय को एक-एक रुपया करके खर्च कर सकता है।

(7) घटती सीमांत उपयोगिता का नियम लागू होता है।

व्याख्या (Explanation)

इस नियम की व्याख्या तालिका 3 और चित्र 3.4 द्वारा की जा सकती है। मान लीजिए एक व्यक्ति की आय 5.00 रुपये है। वह अपनी इस सीमित आय को दो वस्तुओं आम और दूध पर खर्च करना चाहता है। यह भी मान लीजिए कि दोनों वस्तुओं की कीमत 1 रुपया प्रति किलो/लीटर है। आमों तथा दूध की सीमांत उपयोगिता तालिका 3 से स्पष्ट हो जाती है।

तालिका 3. सम-सीमांत उपयोगिता का नियम

खर्च किया गया रुपया *(Rupee Spent)*	*आमों की सीमांत उपयोगिता* *(M.U. of Mangoes)*	*दूध की सीमांत उपयोगिता* *(M.U. of Milk)*
पहला (1st)	12	10
दूसरा (2nd)	10	8
तीसरा (3rd)	8	6
चौथा (4th)	6	4
पाँचवाँ (5th)	4	2

मान लीजिए उपभोक्ता अपनी आमदनी को एक-एक रुपया करके खर्च करता है। आमों पर खर्च किए गए पहले रुपये से उसे 12 इकाइयाँ (यूटिल) सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है और दूध पर खर्च किए पहले रुपए से 10 इकाइयाँ सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। इसलिए वह पहला रुपया आमों पर खर्च करेगा। दूसरे और तीसरे रुपये में से एक दूध पर दूसरा आम पर खर्च करेगा। इस प्रकार अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता अपनी 5.00 रुपये की आय में से 3.00 रुपये आमों पर तथा 2.00 रुपये दूध पर खर्च करेगा। आमों पर खर्च किए गए तीसरे रुपये से 8 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है और दूध पर खर्च किए गए दूसरे रुपये से भी 8 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। इस प्रकार दोनों वस्तुओं पर खर्च किए गए रुपये की अंतिम इकाई से उपभोक्ता को समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त होगी। उपभोक्ता की आय का यह वितरण उसकी कुल संतुष्टि को अधिकतम करता है। आमों से मिलने वाली उपयोगिता = 12 + 10 + 8 = 30 इकाइयाँ (या यूटिल)। दूध से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता 10 + 8 = 18 इकाइयाँ। कुल उपयोगिता 30 + 18 = 48 इकाइयाँ। यदि उपभोक्ता किसी दूसरे प्रकार से आय का व्यय करेगा तो कुल उपयोगिता कम हो जाएगी।

नोट

मान लीजिए उपभोक्ता आमों पर एक रुपया अधिक अर्थात् 4.00 रुपये तथा दूध पर एक रुपया कम अर्थात् कुल 1.00 रुपया खर्च करता है। आमों पर एक रुपया अधिक खर्च करने से उपभोक्ता को 6 इकाइयाँ उपयोगिता अधिक प्राप्त होगी परंतु दूध पर एक रुपया कम खर्च करने से उसे उपयोगिता की 8 इकाइयों की हानि होगी।

आय के इस प्रकार वितरण से उपभोक्ता को आमों पर खर्च किए गए 4.00 रुपयों से कुल उपयोगिता 12 + 10 + 8 + 6 = 36 इकाइयाँ प्राप्त होंगी तथा दूध पर खर्च किए जाने वाले 1.00 रुपये से 10 इकाई उपयोगिता प्राप्त होगी। इस प्रकार 5.00 रुपये की आय खर्च करने से उपभोक्ता को 36 + 10 = 46 इकाइयाँ (यूटिल) कुल उपयोगिता प्राप्त होगी। यह कुल उपयोगिता आय के पहले वितरण से प्राप्त कुल उपयोगिता की तुलना में 2 इकाइयाँ कम हैं। अत: उपभोक्ता की आय का दूसरा वितरण उतनी संतुष्टि नहीं देगा जितनी उस वितरण से प्राप्त होगी जिसमें विभिन्न वस्तुओं पर खर्च की गई रुपये की अंतिम इकाइयों से समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। सम सीमांत उपयोगिता नियम को चित्र 1.4 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

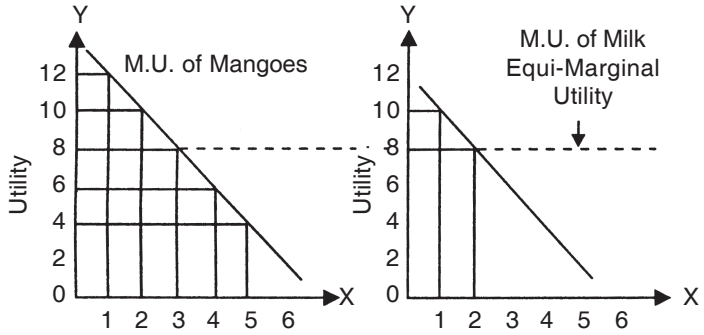

(A) Expenditure (Rupees) on Mangoes (B) Expenditure (Rupees) on Milk

चित्र 1.4

उपरोक्त चित्र 1.4(A) तथा 1.4(B) में OX- अक्ष पर रुपयों की इकाइयाँ तथा OY- अक्ष पर सीमांत उपयोगिता प्रकट की गई है। चित्र 1.4(A) में आमों के उपभोग से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता तथा चित्र 1.4(B) में दूध से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता को दिखाया गया है। इस चित्र से प्रकट होता है कि यदि उपभोक्ता की आय 5.00 रुपये है तो वह 3.00 रुपये आमों पर तथा 2.00 रुपये दूध पर खर्च करेगा क्योंकि आमों पर खर्च किए गए तीसरे रुपये से तथा दूध पर खर्च किए गए दूसरे रुपये से उसे समान उपयोगिता अर्थात् 8 इकाइयाँ प्राप्त हो रही हैं। चित्र 1.4 में **बिंदु रेखा** (Dotted Line .....) दोनों वस्तुओं पर खर्च की गई रुपये की अंतिम इकाई से मिलने वाली समान सीमांत उपयोगिता को प्रकट कर रही है। अपनी आय का इस प्रकार आमों तथा दूध पर वितरण करने पर उपभोक्ता को 48 इकाइयाँ कुल उपयोगिता प्राप्त हो रही हैं। उपभोक्ता को 5.00 रुपये के खर्च से प्राप्त होने वाली यह अधिकतम कुल उपयोगिता होगी। अपनी आय के इस प्रकार व्यय करने से उपभोक्ता **अधिकतम संतुष्टि** प्राप्त करेगा।

यदि उपभोक्ता अपनी आय को आमों तथा दूध पर किसी दूसरी प्रकार से खर्च करता है तो उसकी कुल उपयोगिता पहले से कम हो जाएगी। इसे नीचे चित्र 1.5 द्वारा स्पष्ट किया गया है–

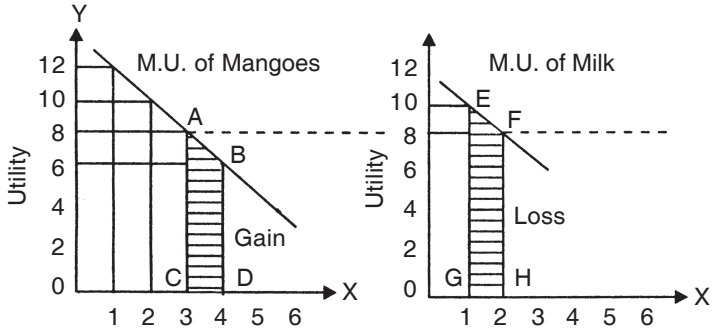

Expenditure (Rupees) on Mangoes Expenditure (Rupees) on Milk

चित्र 1.5

चित्र 1.5 से ज्ञात होता है कि उपभोक्ता को आमों पर एक रुपया अधिक खर्च करने से ABCD क्षेत्रफल के बराबर अर्थात् 6 इकाइयाँ सीमांत उपयोगिता अधिक प्राप्त होगी। इसी प्रकार दूध पर एक रुपया कम खर्च करने से सीमांत उपयोगिता EFGH क्षेत्रफल के बराबर अर्थात् 8 इकाइयों की कमी या हानि होगी। उपभोक्ता को अपनी आय के नए वितरण से 46 इकाइयाँ उपयोगिता प्राप्त होगी जबकि पहले वितरण से 48 इकाइयाँ कुल उपयोगिता प्राप्त हुई थी।

नोट

1.12 नियम की आधुनिक व्याख्या (Modern Statement of the Law)

आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम को **अनुपातिकता का नियम** (Law of Proportionality) के नाम से पुकारते हैं। उनके अनुसार **एक उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि या संतुलन की स्थिति उस समय प्राप्त कर सकता है जब भिन्न-भिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमांत उपयोगिता तथा उनके कीमत के अनुपात में समानता हो जाए।** मान लीजिए एक सेब की कीमत 50 पैसे है और उपभोक्ता 10 सेब खरीदता है। दसवें सेब से उसे 6 यूटिल उपयोगिता प्राप्त होती है। इसलिए दसवें सेब से प्रति रुपया सीमांत उपयोगिता निम्नलिखित सूत्र की सहायता से ज्ञात हो सकती है–

$$\frac{MU_a}{P_a} = \frac{6}{0.5} = \textbf{12 यूटिल प्रति रुपया}$$

(यहाँ MU_a = सेब की सीमांत उपयोगिता तथा P_a = सेब की प्रति इकाई कीमत।)

इसी प्रकार, यदि केले की कीमत 25 पैसे प्रति केला है तो उपभोक्ता 12 केले खरीदता है। 12वें केले से उसे 3 यूटिल सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। अत: 12वें केले से प्रति रुपया सीमांत उपयोगिता निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात होगी–

$$\frac{MU_b}{P_b} = \frac{3}{0.25} = \textbf{12 यूटिल प्रति रुपया}$$

(यहाँ MU_b = केलों की सीमांत उपयोगिता और P_b = कीमत प्रति केला)

उपरोक्त उदाहरण में उपभोक्ता को दोनों वस्तुओं से प्रति रुपया समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो रही है। इसलिए उसे एक पर कम तथा दूसरे पर अधिक धन खर्च करने से कोई लाभ नहीं होगा। वह इस व्यय में कोई भी परिवर्तन करना पसंद नहीं करेगा। इसलिए यह कहा जाता है कि उपभोक्ता निम्न अवस्था में संतुलन की स्थिति में होता है–

$$\frac{MU_a}{P_a} = \frac{MU_b}{P_b} \quad \text{or} \quad \frac{MU_a}{MU_b} = \frac{P_a}{P_b}$$

संक्षेप में, उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं की इतनी मात्रा खरीदेगा कि उनसे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता तथा उनकी कीमत का अनुपात बराबर हो। आय को इस प्रकार व्यय करने से उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होगी। यदि उपभोक्ता 'n' वस्तुएँ खरीद रहा है तब निम्न सूत्र के अनुसार वह अपने व्यय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करेगा–

$$\frac{MU_a}{P_a} = \frac{MU_b}{P_b} = \frac{MU_c}{P_c} \ldots\ldots \frac{MU_n}{P_n}$$

1.13 नियम का महत्त्व (Importance of the Law)

सम-सीमांत उपयोगिता नियम का अर्थशास्त्र में बहुत अधिक महत्त्व है। **रॉबिंस** ने इसे अर्थशास्त्र का आधार कहा है। **मार्शल** के अनुसार, **''यह नियम अर्थशास्त्र के लगभग सभी क्षेत्रों में लागू होता है।''** (The application of the principle of equi-marginal utility extends over almost every field of economic enquiry. **—Marshall**)

नोट

उदाहरण के लिए–

1. **उपभोग** (Consumption)–प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधनों से **अधिकतम संतुष्टि** प्राप्त करना चाहता है। यदि उपभोक्ता इस नियम के अनुसार अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस ढंग से व्यय करे कि उन पर खर्च किए जाने वाले रुपये की अंतिम इकाई से **समान सीमांत उपयोगिता** प्राप्त हो तो उपभोक्ता अपनी आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करेगा।
2. **उत्पादन** (Production)–प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य **अधिकतम लाभ** प्राप्त करना होता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उसे उत्पादन के विभिन्न साधनों, जैसे भूमि, श्रम, पूँजी आदि का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि विभिन्न साधनों की **सीमांत उत्पादकता** (Marginal Productivity) बराबर हो जाए। उत्पादक को उत्पादन के साधनों का तब तक प्रतिस्थापन करते रहना चाहिए जब तक कि सभी साधनों से मिलने वाली सीमांत उत्पादकता बराबर न हो जाए। इस तरह सीमिति साधनों के समायोजन करने से ही उत्पादक को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकते हैं।
3. **विनिमय** (Exchange)–विनिमय का अर्थ है कम उपयोगिता की वस्तु को अधिक उपयोगिता वाली वस्तु द्वारा बदलना। इस नियम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति विनिमय करते समय कम उपयोगिता वाली वस्तु को अधिक उपयोगिता वाली वस्तु से उस समय तक प्रतिस्थापित करता रहेगा जब तक **दोनों से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर न हो जाए।** जहाँ दोनों से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर हो जाती है, वहीं विनिमय रोक दिया जाता है। मुद्रा का भी दूसरी वस्तुओं या सेवाओं के बदले में विनिमय तब तक ही करना चाहिए जब तक उनसे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता, उन पर खर्च किए जाने वाली मुद्रा की सीमांत उपयोगिता के, बराबर नहीं हो जाती।
4. **वितरण** (Distribution)–वितरण का अर्थ है राष्ट्रीय आय का विभिन्न साधनों में बँटवारा। यह बँटवारा इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक साधन को अपनी **सीमांत उत्पादकता** के बराबर राष्ट्रीय आय में से भाग प्राप्त हो जाए। ऐसा बँटवारा करने के लिए साधनों (जैसे श्रम के लिए पूँजी का प्रतिस्थापन) का प्रतिस्थापन तक होता रहता है जब तक उत्पादन के साधनों की सीमांत उत्पादकता उनको मिलने वाली **आय** (Remuneration) के बराबर न हो जाए तथा विभिन्न साधनों की सीमांत उत्पादकता आपस में बराबर न हो जाए।
5. **सार्वजनिक वित्त** (Public Finance)–इस नियम का सार्वजनिक वित्त अर्थात् राज्य की आय तथा व्यय के संबंध में भी बड़ा महत्त्व है। कर लगाते समय वित्त मंत्री इस नियम की सहायता लेता है। वह कर ऐसे तरीके से लगाता है कि प्रत्येक करदाता का **सीमांत त्याग** (Marginal Sacrifice) बराबर हो, तब ही करदाताओं पर उस कर का बोझ कम से कम पड़ेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वित्त मंत्री को एक कर के स्थान पर दूसरे कर का प्रतिस्थापन करना पड़ता है। इसी प्रकार सरकारी व्यय करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक प्रकार के व्यय से प्राप्त होने वाला **सीमांत लाभ** (Marginal Benefit) जनता के लिए बराबर हो। जब किसी देश में करों के रूप में किया गया **सीमांत सामाजिक त्याग** (Marginal Social Sacrifice) तथा व्यय से प्राप्त **सीमांत सामाजिक लाभ** (Marginal Social Benefit) बराबर हो जाए तो **अधिकतम सामाजिक लाभ** (Maximum Social Advantage) प्राप्त होगा।
6. **बचत तथा उपभोग में आय का वितरण** (Distribution of Income between Saving and Consumption)–इस नियम के अनुसार बचत तथा उपभोग पर आय का वितरण इस तरह करना चाहिए कि वर्तमान आवश्यकता पर खर्च की जाने वाली मुद्रा की अंतिम इकाई से उतनी ही उपयोगिता प्राप्त हो जो बचत के लिए रखी गई मुद्रा की अंतिम इकाई की उपयोगिता के बराबर हो। इस प्रकार का वितरण **आदर्श वितरण** (Optimum Allocation) कहलाता है।
7. **वस्तुओं का आदर्श वितरण** (Optimum Distribution of Commodities)–स्वतंत्र बाज़ार अर्थव्यवस्था में इस नियम की सहायता से समाज में वस्तुओं के आदर्श वितरण का अध्ययन किया जा सकता है। आदर्श वितरण वस्तुओं का वह वितरण है जिसमें थोड़ा-सा भी परिवर्तन समाज द्वारा प्राप्त कुल उपयोगिता को कम कर देगा। **आदर्श वितरण उस समय संभव होता है जब किसी वस्तु का विभिन्न व्यक्तियों में इस प्रकार वितरण किया जाए कि प्रत्येक व्यक्ति को मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर हो जाए।**

8. **संपत्ति का वितरण** (Distribution of Assets)–यह नियम लोगों को अपनी संपत्ति विभिन्न कार्यों में वितरित करने में सहायता देता है। मान लीजिए किसी व्यक्ति के पास एक लाख रुपया है, वह इस रुपये को विभिन्न प्रकार की परिसंपत्तियों जैसे नकदी, बैंक जमा, बॉण्ड्स, स्टॉक, शेयर तथा मकान आदि में निवेश करना चाहता है। इस नियम के अनुसार धन का विभिन्न परिसंपत्तियों (Assets) पर इस प्रकार निवेश किया जाना चाहिए कि प्रत्येक परिसंपत्ति पर निवेश की गई रुपये की अंतिम इकाई से समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो। इस प्रकार उसे सब परिसंपत्तियों से लगभग समान रूप से मनोवैज्ञानिक लाभ प्राप्त होगा और वह अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकेगा।

नोट

टास्क नियम के महत्त्व पर अपने विचार व्यक्त करें।

1.14 नियम की आलोचनाएँ (Criticisms of the Law)

इस नियम की मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं–

1. **उपभोक्ता पूरी तरह से विवेकशील नहीं होते** (Consumers are not Fully Rational)–इस नियम की यह मान्यता, कि उपभोक्ता-पूर्ण रूप से विवेकशील होते हैं, उचित नहीं है। उपभोक्ता स्वभाव से ही आलसी होते हैं, वे अपनी आदतों, रीति-रिवाजों आदि को संतुष्ट करने के लिए कई बार कम उपयोगिता वाली वस्तुओं को भी खरीद लेते हैं। इसके फलस्वरूप उनको अधिकतम संतुष्टि प्राप्त नहीं होती।
2. **उपभोक्ता का हिसाबी न होना** (Consumer is not Calculating)–यह नियम इस गलत मान्यता पर आधारित है कि अपनी आय खर्च करते समय उपभोक्ता यह हिसाब लगाता रहता है कि रुपये की प्रति इकाई से उसे कितनी सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो रही है। इस नियम की यह मान्यता भी उचित नहीं है कि उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं पर खर्च किए जाने वाले रुपयों की इकाइयों से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता की तुलना करता रहता है। वास्तविक जीवन में शायद ही कोई उपभोक्ता इतना अधिक हिसाबी होता है कि वह प्रत्येक वस्तु से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता की तुलना करता रहे। इस प्रकार इस नियम का व्यावहारिक रूप में लागू होना कठिन हो जाता है।
3. **वस्तुओं की उपलब्धता का अभाव** (Non-availability of Goods)–यदि अधिक उपयोगिता देने वाली वस्तुएँ बाजार में उपलब्ध नहीं होतीं तो उपभोक्ता को कम उपयोगिता देने वाली वस्तुओं का उपभोग करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए, यदि बाजार में कुकिंग गैस की कमी है तब हमें कोयला या मिट्टी का तेल जलाना पड़ेगा। यदि इनकी उपयोगिता कुकिंग गैस की तुलना में कम होती है तो उपभोक्ता अधिकतम संतुष्टि प्राप्त नहीं कर सकेगा।
4. **उपभोक्ता की अज्ञानता** (Ignorance of the Consumer)–उपभोक्ता को उपभोग से संबंधित कई बातों का ज्ञान नहीं होता। कई बार उसे वस्तुओं की उचित कीमत का पता नहीं होता। उसे यह भी ज्ञान नहीं होता कि वस्तु के सस्ते प्रतिस्थापन कौन से हैं। उसे वस्तु के विभिन्न उपयोगों का ज्ञान नहीं होता। इस अज्ञानता के कारण उपभोक्ता अपने खर्च को इस ढंग से नहीं कर पाता कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो।
5. **वस्तुओं की अविभाज्यता** (Indivisibility of Goods)–यह नियम उन वस्तुओं पर लागू नहीं होता जिन्हें छोटे-छोटे भागों में बाँटना संभव न हो। कार, टेलीविजन सेट, स्कूटर आदि की कम से कम एक इकाई हमें अवश्य खरीदनी पड़ेगी। यदि हमें विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता को बराबर करने के लिए इन अविभाजित वस्तुओं की एक अधिक इकाई की आवश्यकता हो तो हमारे लिए उसे खरीदना संभव न होगा, इसलिए यह नियम इन अविभाजित वस्तुओं पर लागू नहीं होता।
6. **अनिश्चित बजट अवधि** (No Definite Budget Period)–इस नियम की एक सीमा यह है कि उपभोक्ता की बजट अवधि निश्चित नहीं है। उपभोक्ता अपनी आय को विभिन्न प्रयोगों में खर्च करने के लिए जिस

नोट

समयावधि का ध्यान रखता है उसे बजट अवधि कहा जाता है। यह एक महीना या एक वर्ष भी हो सकती है। बहुत-सी वस्तुएँ जैसे टेलीविजन, फ्रिज आदि एक बजट अवधि में खरीदी जाती हैं, परंतु उनसे कई बजट अवधियों में उपयोगिता प्राप्त होती रहती है। इन वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता की तुलना अन्य वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताओं से नहीं की जा सकती।

7. **उपयोगिता का गणनावाचक माप संभव नहीं है** (The Cardinal Measurement of Utility is not Possible)–इस नियम की यह मान्यता वास्तविक नहीं है कि उपयोगिता को गणनावाचक संख्याओं में मापा जा सकता है। उपयोगिता को मापना संभव नहीं है। उपभोक्ता यह कैसे कह सकता है कि उसको पहले आम से 12 इकाई उपयोगिता तथा दूसरे आम से 10 इकाई उपयोगिता प्राप्त होगी। सीमांत उपयोगिता का अनुमान लगाए बिना इस नियम को लागू नहीं किया जा सकता।
8. **मुद्रा की सीमांत उपयोगिता में परिवर्तन** (Change in the Marginal Utility of Money)– इस नियम की यह मान्यता भी वास्तविक नहीं है कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता में परिवर्तन नहीं होता है। वास्तविक जीवन में मुद्रा की सीमांत उपयोगिता कम या अधिक हो सकती है। जब कोई उपभोक्ता वस्तु की अधिक मात्रा खरीदता है तो उसके पास मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है। मुद्रा की मात्रा जितनी कम होगी उतनी ही उसकी सीमांत उपयोगिता अधिक होगी। मुद्रा की सीमांत उपयोगिता बढ़ने के कारण उपभोक्ता को अपने खर्च के क्रम में परिवर्तन करना पड़ेगा। इसके फलस्वरूप इस नियम का लागू होना कठिन हो जाएगा।
9. **पूरक वस्तुएँ** (Complementary Goods)–यह नियम पूरक वस्तुओं के संबंध में लागू नहीं होता। इसका कारण यह है कि पूरक वस्तुओं का प्रयोग एक निश्चित अनुपात में किया जाता है। एक वस्तु का उपयोग कम करके दूसरी वस्तु का उपयोग बढ़ाया नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए, कैमरे के साथ रील तथा टेप-रिकार्डर के साथ टेपें अवश्य खरीदनी पड़ेंगी।

वास्तव में, इस नियम की आलोचना होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि सम सीमांत उपयोगिता का नियम अर्थशास्त्र का एकमात्र नियम है। यह नियम वास्तविक जीवन में उपभोक्ताओं की अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने की विस्तृत प्रवृत्ति का वर्णन करता है।

संक्षेप में, **चैपमैन** ने इस नियम के विषय में ठीक कहा है कि, **''सम-सीमांत या प्रतिस्थापन के नियम के अनुसार हम अपनी आय को वितरण करने के लिए उस प्रकार मजबूर नहीं होते जिस प्रकार एक पत्थर को ऊपर फेंके जाने पर नीचे गिरने के लिए मजबूर होना पड़ता है। परंतु चूँकि हम विवेकशील हैं इसलिए हम इस नियम के अनुसार काम करते हैं।''** (We are not, of course, compelled to distribute our income according to the Law of Substitution or Equi-marginal expenditure, as a stone thrown in air is compelled to, in a sense, to fall back to the earth but as a matter of fact, we do so in a certain rough fashion because we are reasonable.) **—Chapman**

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सही/गलत छाँटिए

(State whether the following statements are True/False)–

8. सम-सीमांत उपयोगिता नियम का भूगोल में बहुत अधिक महत्त्व है।
9. प्रत्येक उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है।
10. वितरण का अर्थ है–राष्ट्रीय आय का विभिन्न साधनों में बँटवारा।
11. प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधनों से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है।
12. उपभोक्ता को उपयोग से संबंधित कई बातों का ज्ञान नहीं होता।

1.15 उपभोक्ता की बचत : एक सचित्र विवरण (Consumer's Surplus : An Illustrative Description)

नोट

हम जानते हैं कि एक उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए कीमत, उसकी सीमांत उपयोगिता के बराबर देना पसंद करता है (अर्थात् वह उतनी मुद्रा देना पसंद करता है जो वस्तु की सीमांत उपयोगिता के बराबर हो)। हम यह भी जानते हैं कि किसी वस्तु की जितनी अधिक मात्रा हम खरीदते हैं उसकी सीमांत उपयोगिता में घटने की प्रवृत्ति पाई जाती है। इसी कारण से किसी वस्तु की माँग वक्र का ढलान बाएँ से दाएँ नीचे की ओर होता है। सच यह है कि सीमांत उपयोगिता वक्र (जो वस्तु की मात्रा और उसकी सीमांत उपयोगिता के बीच विपरीत संबंध को प्रकट करती है।) माँग वक्र का ही दूसरा रूप है जो वस्तु की कीमत और उसकी मात्रा के बीच विपरीत संबंध को दर्शाती है। क्योंकि कीमत को वस्तु की सीमांत उपयोगिता के बराबर किया जाता है, इसलिए वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई खरीदने के लिए उपभोक्ता कम कीमत देने के लिए तैयार होता है, वह हर बार वस्तु की घटती सीमांत उपयोगिता के साथ कीमत को बराबर करता है। परंतु बाजार में वस्तु की प्रत्येक इकाई अलग-अलग कीमत पर खरीदी नहीं जाती। खरीदी गई वास्तव में सभी इकाइयों के लिए एक ही कीमत दी जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु की कुछ इकाइयों के लिए, जो वह वास्तव में देता है, उससे अधिक देने के लिए वह तैयार होता है। वह राशि जो वह देने को तैयार होता है तथा वास्तव में वह देता है, उसके अंतर को उपभोक्ता की बचत कहते हैं। (The sum total of the difference between what he actually intends to pay and what he actually pays, is what is called consumer's surplus.)

उदाहरण (Illustration)

निम्नलिखित उपभोक्ता की बचत की स्थिति को व्यक्त करती है–

तालिका 4

X की इकाई	MU_x	P_X *या उपभोक्ता देने को तैयार (रु.)*	*वास्तविक कीमत*	*उपभोक्ता की बचत (ऐच्छिक कीमत-वास्तविक कीमत)*
1st	100	10	4	10 – 4 = 6
2nd	80	8	4	8 – 4 = 4
3rd	60	6	4	6 – 4 = 2
4th	40	4	4	4 – 4 = 0

उपभोक्ता की बचत 6 + 4 + 2 = 12 रुपये

(**नोट–**यह तालिका इस मान्यता पर बनाई गई है कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता = 10 इकाइयाँ और यह स्थिर है)

चित्र 1.6 उपभोक्ता की बचत की स्थिति को व्यक्त करता है–

इस चित्र से यह प्रकट होता है कि उपभोक्ता वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त/आने वाली इकाई के लिए L, L_1..... L_6 कीमत देने के लिए तैयार है, अर्थात् अपने विवेक के अनुरूप प्रत्येक इकाई के लिए वह उतनी राशि ही देना चाहेगा जिस पर वस्तु की प्रत्येक इकाई की सीमांत उपयोगिता उसकी कीमत के बराबर हो। घटती हुई सीमांत उपयोगिता के साथ ऐच्छिक कीमत (Intended Price) में भी गिरने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यदि वस्तु की कुल खरीद OS है, तब उपभोक्ता जो कुल ऐच्छिक कीमत देने को तैयार है वह OSL_6L क्षेत्र के बराबर है (यह OSL_6L क्षेत्र प्रत्येक इकाई की उस सब कीमत का जोड़ है जो उपभोक्ता देने को तैयार है या देने की इच्छा रखता है)। कुल वास्तविक कीमत जो उपभोक्ता देता है या उसे देनी है = OS × OP = OSL_6P

नोट

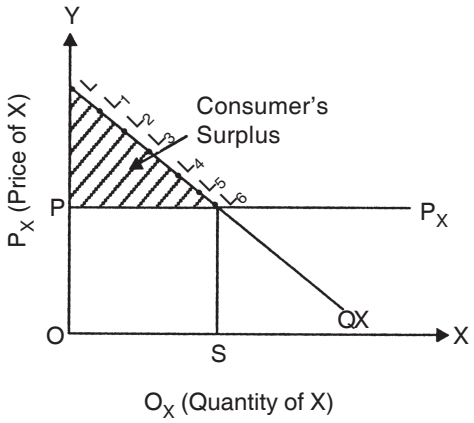

चित्र 1.6

इसके अनुसार,

उपभोक्ता की बचत = OSL_6L (कुल ऐच्छिक कीमत) – क्षेत्र OSL_6P (कुल वास्तविक कीमत)

= क्षेत्र PL_6L.

अन्य शब्दों में, **उपभोक्ता की बचत** = $OSL_6L - OSL_6P = PL_6L$

1.16 सारांश (Summary)

- सम-सीमांत उपयोगिता के नियम के अनुसार एक उपभोक्ता अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं पर खर्च करके अधिकतम संतुष्टि या संतुलन की स्थिति प्राप्त कर सकता है। उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति वह अवस्था है जिसमें एक उपभोक्ता अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर रहा है। अर्थशास्त्र में उपभोक्ता के व्यय से संबंधित इस नियम की व्याख्या सबसे पहले 19वीं शताब्दी के फ्रेंच इंजीनियर **गॉसेन** ने की थी। इसलिए इसे **गॉसेन का द्वितीय नियम** (Second Law of Gossen) भी कहा जाता है। **डॉ. मार्शल** ने इस नियम को **''सम-सीमांत उपयोगिता का नियम''** कहा है। **इस नियम के अनुसार एक उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिए विभिन्न वस्तुओं पर अपनी सीमित आय इस प्रकार खर्च करनी चाहिए कि प्रत्येक वस्तु पर खर्च किए जाने वाले अंतिम रुपये से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर हो।** अर्थशास्त्रियों ने इस नियम के विभिन्न नाम दिए हैं।

1.17 शब्दकोश (Keywords)

1. **सीमांत उपयोगिता** (Marginal Utility)–अतिरिक्त उपयोगिता
2. **मान्यताएँ** (Assumptions)–सिद्धांत, मत
3. **उपभोक्ता** (Consumer)–उपभोग करने वाला
4. **नियम** (Law)–पद्धति।

1.18 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. उपयोगिता क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. कुल उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता में अंतर बताइए।
3. सम-सीमांत उपयोगिता के क्या नियम हैं?
4. 'उपभोक्ता की बचत' से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

1. संतुष्टि	2. यूटिल (Util)	3. अतिरिक्त	4. (अ)
5. (अ)	6. (अ)	7. (स)	8. गलत
9. सही	10. सही	11. सही	12. सही।

नोट

1.19 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. माइक्रोइकॉनोमिक्स : प्रिंसिपल्स एप्लीकेशंस एंड टूल्स–संजय बासोतिया, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010।
2. माइक्रॉइकॉनोमिक्स–फ्रेंक कॉवैल, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007।
3. माइक्रोइकॉनोमिक्स–रॉबर्ट एस पिंडीक, डैनियल एल रूबिनफेल्ड एंड प्रेम एल मेहता, पीयर्सन एजुकेशन, 2009, पीबीके, सातवाँ एडीशन।

इकाई–2

उत्पादन, लागत एवम् पूर्ण प्रतियोगिता

संरचना (Structure)

2.1 उद्देश्य (Objectives)
2.2 प्रस्तावना (Introduction)
2.3 उत्पादन प्रकार्य या फलन (The Production Function)
2.4 उत्पादन फलन : सममात्रा - समलागत सिद्धान्त
(Production Function : The Isoquant-Isocost Approach)
– समोत्पाद वक्रों की विशेषताएँ
2.5 समोत्पादक वक्र तथा सर्वोत्तम साधन संयोग
– समलागत वक्र (Isocost Curves)
2.6 तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर का नियम (The Principle of Marginal Rate of Technical Substitution)
– साधन स्थानापन्नता की लोच (Elasticity of Substitution)
2.7 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (The Law of Variable Proportions)
– पैमाने के प्रतिफल के नियम (The Laws of Returns of Scale)
2.8 लागतों की प्रकृति तथा लोच (The Nature of Costs and Cost Elasticity)
2.9 लागतों का परंपरागत सिद्धांत (The Traditional Theory of Costs)
– फर्म के अल्पकालीन लागत वक्र (Firm's Short-Run Costs Curves)
– फर्म के दीर्घकालीन लागत वक्र (Firm's Long-Run Cost Curves)
2.10 लागतों का आधुनिक सिद्धांत (The Modern Theory of Costs)
2.11 लागतों की लोच (Elasticity of Costs)
- सारांश
- मूल्यांकन प्रश्न
- सन्दर्भ ग्रन्थ

2.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- उत्पादन फलन का अर्थ एवं परिभाषा समझने हेतु।
- उत्पत्ति के नियम का वर्णन करने हेतु।
- उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण हेतु।
- उत्पादन लागत का ज्ञान प्राप्त करने हेतु।
- लागत के विश्लेषण की जानकारी हेतु।

नोट

2.2 प्रस्तावना (Introduction)

उत्पादन प्रकार्य आगतों (Input) एवं निर्गतों (Output) की मात्राओं के फलनात्मक संबध को व्यक्त करता है। यह बताता है कि समय की एक निश्चित अवधि में आगतों के परिवर्तन से निर्गतों में किस प्रकार और कितनी मात्रा में परिवर्तन होता है।

इस अध्याय में उत्पादन के निर्णयन नियोजन, विवरण आदि का ज्ञान कराना है। इसके अतिरिक्त इसका मुख्य उद्देश्य उत्पादन किस स्तर पर किया जाये और कुल आय में वृद्धि कैसे की जाये।

2.3 उत्पादन प्रकार्य या फलन (The Production Function)

सैम्युलसन के अनुसार – "उत्पादन फलन वह प्राविधिक संबध है जो यह बताता है कि पड़तों या आगतों के प्रत्येक विशेष समूह द्वारा कितना उत्पादन किया जा सकता है। यह किसी दी हुई प्राविधिक ज्ञान की स्थिति के लिये परिभाषित या संबधित होता है।"

उत्पादन प्रकार्य को गणितीय समीकरण के रुप में व्यक्त किया जा सकता है:

आश्रित चर = फलन (स्वतंत्र चर/चरों)

$$P = f(T)$$

P, T का फलन है।

P एक आश्रित चर तथा T एक स्वतन्त्र चर है।

उत्पादन के साधनों के मूल्य तथा उत्पादों के मूल्य को उत्पादन फलन में सम्मिलित नहीं किया जाता। यदि श्रम को L, पूँजी को K, तकनीकी को T, साहसी को E तथा उत्पादन को P से व्यक्त किया जाये तो हम उत्पादन फलन को गणितीय रुप में व्यक्त कर सकते हैं।

$$P = f(L, K, T, E)$$

समीकरण में P (उत्पादन) निर्भर है L, K, T, E पर, अर्थात निर्गतों की P मात्रा आगतों की L, K, T, E मात्रा पर निर्भर है। T पर बार का तात्पर्य है उत्पादन करते समय तकनीक स्थिर रहेगी। फलनों को समझने के लिये दो भागों में बाँटा गया है, प्रथम, सामान्य मांग फलन और द्वितीय, विशिष्ट मांग फलन। सामान्य मांग फलन हमें वस्तु की मांग को प्रभावित करने वाले तत्वों के बारे में बताता है। वहीं दूसरी ओर विशिष्ट मांग फलन मांग और उनको निर्धारित करने वाले तत्वों के आपसी सम्बन्ध के बारे में जानकारी देता है। विशिष्ट मांग फलन द्वारा हम स्वतन्त्र एवं आश्रित चरों के आपसी सम्बन्धों को परिणात्मक रुप में व्यक्त करते हैं।

उत्पादन प्रकार्य या फलन की मान्यतायें (Assumptions of Production Function)

उत्पादन फलन की निम्नलिखित मान्यतायों पर आधारित है–

1. इसमें उत्पादन की तकनीक अपरिवर्तित है।
2. उत्पादन फलन की यह भी मान्यता निहित है कि दी हुई उत्पादन की तकनीक के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों का कुशलतम प्रयोग होता है।
3. उत्पादन के साधनों के मूल्य स्थिर हैं।
4. एक उत्पादन फलम केवल एक निश्चित समय के लिये सत्य होता है। अन्य समयों के लिये नहीं होगा।

उत्पादन फलन की विशेषतायें (Characteristics of Production Function)

उत्पादन फलन की निम्नलिखित विशेषतायें हैं–

1. उत्पादन फलन का संबंध एक निश्चित समय से होता है इसलिये इसे प्रति इकाई समय के आधार पर ही परिभाषित किया जाता है।

नोट

2. उत्पादन फलन कीमतों से स्वतन्त्र होता है।
3. उत्पादन फलन को गणितीय रुप में ही व्यक्त किया जाता है और उससे सम्बन्ध चरों को आगतों एवं निर्गतों के रुप में प्रयुक्त किया जाता है। उत्पादन को आश्रित चर तथा साधनों की मात्राओं को स्वतन्त्र चर कहा जाता है।
4. उत्पादन के साधनों की प्रकृति से ही उत्पादन फलन का आकार निर्धारित होता है।
5. उत्पादन फलन एक इंजीनियरिंग अवधारणा है।
6. उत्पादन तकनीक में परिवर्तन होने पर उसका उत्पादन फलन भी बदल जाता है।

उत्पादन की तकनीकी अवस्थाओं द्वारा निर्धारित उत्पादन फलन दो प्रकार का होता है, जिसे समय के आधार पर बांटा गया है। प्रथम, अल्पकालीन उत्पादन फलन एवं द्वितीय, दीर्घकालीन उत्पादन फलन।

2.4 उत्पादन फलन: सममात्रा - समलागत सिद्धान्त (Production Function: The Isoquant - Isocost Approach)

दो परिवर्ती आगतो सहित उत्पादन-फलन को समोत्पाद वक्रों के संभावित संयोगो द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है। इन्हें सममात्रा वक्र अथवा उत्पादन उदासीनता वक्र भी कहा जाता है। लेकिन हम तो इन्हें समोत्पादन वक्र कहकर ही सम्बोधित करेंगे।

कीरस्टेड के अनुसार 'समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन सम्भावित संयोगों को बताती है जो कि एक समान कुल उत्पादन प्रदान करते हैं।

रेखाकृति द्वारा स्पष्टीकरण

जैसा कि ऊपर बताया गया है, एक निश्चित प्रदा को फर्म द्वारा विभिन्न वैकल्पिक साधन-संयोगों का प्रयोग करके प्राप्त किया जाता है। आइए, अब हम यह मान लें कि किसी वस्तु की 50 इकाइयों की प्रदा को उत्पन्न करने हेतु X तथा Y के निम्नलिखित वैकल्पित संयागों में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है।

सारणी 1

साधन x		साधन y	प्रदा
1.	+	10	50 इकाइयाँ
2.	+	7	50 इकाइयाँ
3.	+	5	50 इकाइयाँ
4.	+	4	50 इकाइयाँ

यदि उपर्युक्त समोत्पाद सूची को हम रेखांकित (Fig. 2.1 देखें) करें तो हमें एक समोत्पाद वक्र प्राप्त होगा। (देखिए, रेखाकृति) X साधन की मात्राओं को X अक्ष के सहारे तथा Y साधन की मात्राओं को Y अक्ष के सहारे व्यक्त किया गया है। AD समोत्पाद वक्र है। यह वक्र उन सभी वैकल्पित साधन-संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे 50 इकाइयों की प्रदा उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ, इस वक्र पर स्थित B बिन्दु X साधन की OM मात्रा तथा Y साधन की ON मात्रा को व्यक्त करता है। इस संयोग से 50 इकाई प्रदा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार, AD वक्र पर स्थित C बिन्दू X साधन की OM_1 तथा Y साधन की ON_1 मात्राएँ वयक्त करता है। यह संयोग भी 60 इकाइयों की समान प्रदा उत्पन्न करता है। इस वक्र पर यदि हम कोई अन्य बिन्दु लें तो वह भी दोनों साधनों के एक ऐसे संयोग को व्यक्त करेगा जिससे समान प्रदा उत्पन्न होगी। यही कारण है कि AD वक्र को समोत्पाद वक्र कहा जाता है। यह वक्र दोनों साधनों के उन सभी संयोगों को व्यक्त करता है जो निश्चित प्रावैधिक परिस्थितियों में प्रदा की 50 इकाइयों

को उत्पन्न करते हैं। स्मरण रहे, हम यहाँ पर यह मानकर चलते है कि प्रावैधिक एवं उत्पादन सम्बन्धी परिस्थितियाँ यथास्थिर रहती है तथा उन परिस्थितियों के अन्तर्गत विभिन्न साधनों का संयोजन कुशलतम ढंग से किया जाता है। अत: वर्तमान प्रावैधिक परिस्थितियों में समोत्पाद वक्र दोनों साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे एक समान निश्चित प्रदा उत्पन्न होती है।

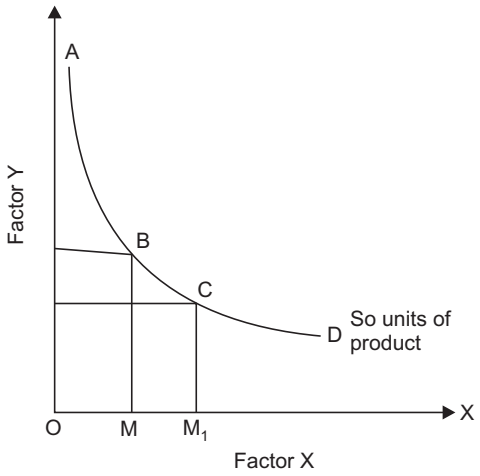

चित्र 2.1

समोत्पाद वक्र एवं उदासीनता वक्र में अद्‌भुत समानता पाई जाती है। समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन सभी संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे प्रदा उत्पन्न होती है। ठीक उसी प्रकार उदासीनता वक्र दो वस्तुओं के उन सभी संयोगों को व्यक्त करता है जिनसे उपभोक्ता को एक समान-सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

लेकिन समोत्पाद वक्र एवं उदासीनता वक्र में दो महत्त्वपूर्ण अन्तर भी पाये जाते हैं। प्रथम, समोत्पाद वक्रों को उत्पादन की इकाइयों की संख्या के रुप में व्यक्त किया जा सकता है जबकी उदासीनता वक्रों को इस प्रकार प्रकट नहीं किया जा सकता। कठिनाई यह है कि उदासीनता-वक्रों को व्यक्त करने हेतु इकाइयाँ ही उपलब्ध नहीं है। किसी समरुप वस्तु के उत्पादन को लीटरों, मीटरों, मीट्रीक टनों, कुन्तलों एवं किलोग्रामों जैसी भौतिक इकाइयों में व्यक्त किया जा सकता है लेकिन उपभोक्ता द्वारा प्राप्त सन्तुष्टि को मापने हेतु भौतिक इकाइयों का हमारे पास पूर्ण अभाव है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता की सन्तुष्टि को मापने के लिए हमारे पास उदासीनता वक्रों को हम IC_1, IC_2, IC_3 इत्यादि जैसे अनिश्चित एवं सामान्य संख्याओं द्वारा चिन्हित करते हैं। इस दृष्टिकोण से समोत्पाद वक्र उदासीनता वक्र ऐसा नहीं करते। दूसरे, यदि हम निम्नतर तथा उच्चतर समोत्पाद वक्र खींचे अथवा यदि हम समोत्पाद मानचित्र का निर्माण करें तो हम सरलता से कह सकते हैं कि एक समोत्पाद वक्र दूसरे समोत्पाद वक्र की तुलना में कितनी अधिक अथवा कितनी कम मात्रा को व्यक्त करता है। उदाहरणार्थ, इस रेखाकृति में दूसरा समोत्पाद वक्र 100 इकाइयों की उपज को व्यक्त करता है। यह उपज प्रथम समोत्पाद वक्र द्वारा निरुपित उपज से 50 इकाइयाँ अधिक है।

इसी प्रकार, तीसरा समोत्पाद वक्र 150 इकाइयाँ उपज प्रकट करता है। यह दूसरे समोत्पाद वक्र द्वारा व्यक्त उपज से 50 इकाइयाँ अधिक है (दूसरी समोत्पाद वक्र 100 इकाई उपज को ही निरुपित करता है।) अत: समोत्पाद मानचित्र की सहायता से हम विभिन्न वक्रों से सम्बन्धित उपजों की भौतिक मात्राओं की माप करते हैं। इसी प्रकार, समोत्पाद मानचित्र में स्थित विभिन्न बिन्दुओं द्वारा निरुपित भौतिक उपज की मात्राओं की तुलना करना भी सम्भव हो जाता है लेकिन उपभोक्ता के उदासीनता-मानचित्र के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उदासीनता मानचित्र में स्थित एक बिन्दु द्वारा व्यक्त सन्तुष्टि दूसरे बिन्दु द्वारा निरुपित सन्तुष्टि से कितना अधिक अथवा कम है, यह सही-सही बताना हमारे लिए सम्भव नहीं है क्योंकि सन्तुष्टि को भौतिक इकाइयों के रुप में मापना सम्भव नहीं है। अत: जब हम उदासीनता मानचित्र की तुलना समोत्पाद मानचित्र से करते हैं तो उदासीनता मानचित्र की यह त्रुटि स्पष्ट: दृष्टिगोचर होती है।

समोत्पाद वक्रों की विशेषताएं

अब हम समोत्पाद वक्रों की विशेषताओं पर विचार करेंगे–

1. समोत्पाद वक्र दायीं ओर नीचे झुकते हैं – जैसा कि ऊपर बताया गया है, समोत्पाद वक्रों एवं उदासीनता वक्रों में कई समरुपताएँ पाई जाती हैं। उदासीनता वक्रों की भाँति समोत्पाद वक्र भी दायीं ओर नीचे झुकते हैं। यदि समोत्पाद वक्र दायीं ओर नीचे न झुकते तो वे बायीं ओर ऊपर उठते अथवा क्षितिजीय होते। यदि कोई समोत्पाद वक्र दायीं ओर ऊपर उठता है, तो इसका अभिप्राय यह होता है कि X तथा Y के दोनों साधनों के बढ़ने अथवा घटने से उत्पादन की मात्रा पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् उत्पादन की मात्रा स्थिर ही रहती है। दूसरे शब्दों में, X तथा Y की अधिक मात्राओं वाला संयोग X एवं Y की कम मात्राओं वाले संयोग दोनों समान उपज प्रदान करते हैं। वास्तव में, यह असंगत ही नहीं, बल्कि मूर्खतापूर्ण बात प्रतीत होती है। जब दोनो साधनों की अधिक अथवा कम मात्राओं का प्रयोग किया जाता है तो दोनों स्थितियों में उपज एक समान नहीं हो सकती। यह बात रेखाकृति से स्पष्ट हो जाती है। (चित्र 2.2 देखें)

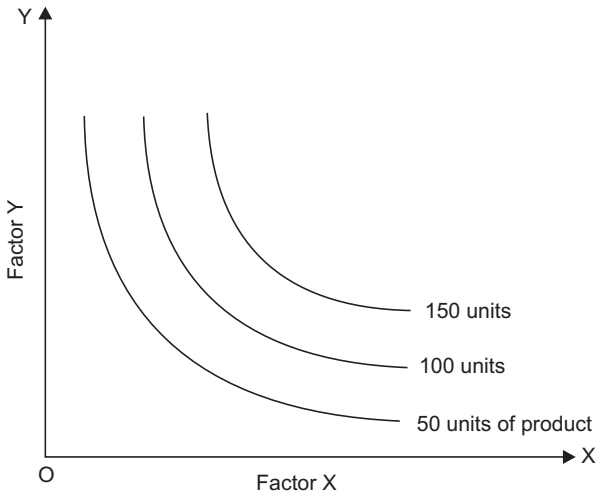

चित्र 2.2

इस रेखाकृति में ऊपर उठते हुए समोत्पाद वक्र पर हम P बिन्दु को लेते है। यह बिन्दु X की OM तथा Y की ON मात्राओं के संयोग को व्यक्त करता है। इसी प्रकार, उसी वक्र पर P_1 बिन्दु X की OM_1 तथा Y की ON_1 मात्राओं के संयोग को प्रकट करता है। चूंकि P तथा P_1 दोनों बिन्दु उसी वक्र पर स्थित है, अत: X तथा Y के दोनों संयोगों से समान उपज प्राप्त होनी चाहिए। लेकिन क्या इन दोनों संयोगो द्वारा समान उपज प्रदान करना सम्भव है? स्पष्टत: नहीं। (चित्र 2.3 देखें)

P_1 बिन्दु द्वारा निरुपित X की OM_1 तथा Y की ON_1 मात्राओं वाला संयोग P बिन्दु पर व्यक्त X की OM तथा Y की ON मात्राओं वाले संयोग से निश्चिय ही अधिक उपज प्रदान करता है। अत: यह कहना कि समोत्पाद वक्र दायीं ओर ऊपर उठता है, वास्तव में निरर्थक ही है। इसी प्रकार यह कहना कि समोत्पाद वक्र क्षितिजीय होता है तार्किक अनर्गलता के सिवाय कुछ नहीं है। इस बात को रेखाकृति में स्पष्ट किया गया है।

P बिन्दु X की OM एवं Y की ON मात्राओं के संयोग को प्रदर्शित करता है। उसी वक्र पर स्थित P_1 बिन्दु X की OM_1 तथा Y की ON मात्राओं के संयोग को प्रकट करता है। चुंकि P तथा P_1 बिन्दु दोनों ही उसी समोत्पाद वक्र पर स्थित हैं अत: इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि X तथा Y के दोनों संयोग समान उपज प्रदान करते हैं। लेकिन क्या दोनों संयोगों के लिए समान उपज प्रदान करना सम्भव है? क्या P_1 बिन्दु वाला संयोग (अर्थात् X की OM_1 तथा Y की ON मात्राओं वाला संयोग) P बिन्दु वाले संयोग (अर्थात् X की OM तथा Y की ON मात्राओं के संयोग) से अधिक उपज प्रदान नहीं करेगा? स्पष्टत: प्रथमोक्त संयोग पश्चादुक्त संयोग से अधिक उपज प्रदान करेगा।

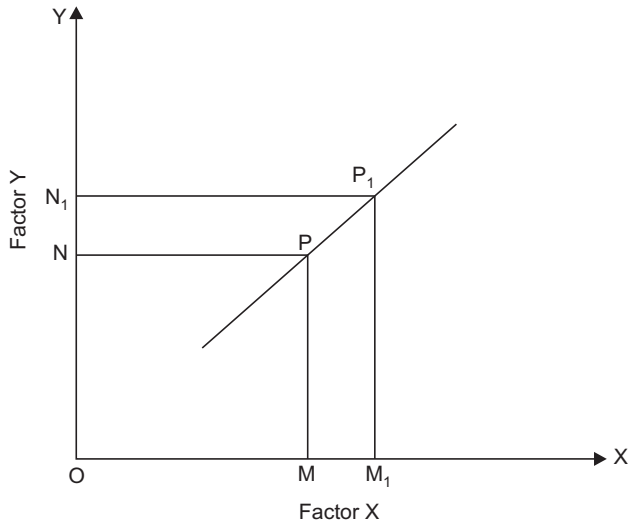

चित्र 2.3

दूसरे शब्दों में X की OM_1 तथा Y की ON_1 मात्राओं वाला संयोग X की OM तथा Y की ON मात्राओं वाले संयोग से अधिक उपज देगा क्योंकि प्रथमोक्त संयोग में पश्चादुक्त संयोग की अपेक्षा MM_1 की सीमा तक X की मात्रा अधिक है। इसके अलावा, प्रतिफल के नियमों के अनुसार जब X जैसे 'परिवर्ती' साधन की अधिकाधिक इकाइयों को Y जैसे स्थिर साधन से संयोजित किया जाता है तो जनित उपज पहले की अपेक्षा अधिक अथवा कम हो सकती है। यदि वर्धमान प्रतिफल नियम कार्यशील है तो उपज पहले की अपेक्षा अधिक होगी। इसके विपरीत, यदि ह्रासमान प्रतिफल नियम क्रियाशील होता है तो उपज पहले की अपेक्षा कम होगी। उपज स्थिर नहीं रह सकती। चूंकि उपयुक्त रेखाकृति में P तथा P_1 बिन्दुओं द्वारा निरुपित साधनों के दोनों संयोग समान उपज प्रदान नहीं करते, इसलिए समोत्पाद वक्र क्षितिजीय नहीं हो सकता। उपयुक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समोत्पाद वक्र न तो दायीं ओर ऊपर उठता है और न ही यह क्षितिजीय होता है। अत: समोत्पाद वक्र दायीं ओर नीचे गिरता है। जैसे कि एक साधन की मात्रा घटती है, दूसरे साधन की मात्रा बढ़ जाती है। जैसा कि रेखाकृति में प्रदर्शित किया गया है, इस वक्र पर स्थित X तथा Y के दोनों साधनों के सभी संयोगों से समान उपज प्राप्त होती है।

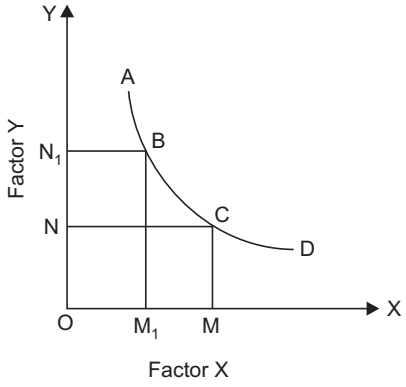

चित्र 2.4

जैसा कि रेखाकृति (Fig. 2.4) में प्रदर्शित किया गया है, X की OM तथा Y की ON मात्राओं वाला संयोग भी ठीक उतनी ही उपज प्रदान करता है जितनी X की OM_1 तथा Y की ON_1 मात्राओं वाला संयोग देता है। जब हम समोत्पाद वक्र के सहारे B से C की ओर जाते हैं तो Y की मात्रा घटती है जबकि X की मात्रा बढ़ती जाती है। परिणामत: उपज समान ही रहती है।

नोट

2. समोत्पाद वक्र उद्गम-बिन्दु की ओर उन्नतोदर (Convex) होते है – इसका अभिप्राय यह है कि समोत्पाद वक्र के सहारे एक साधन का दूसरे साधन के रुप में सीमान्त महत्त्व अथवा उनकी सीमान्त प्रतिस्थापन-दर घटती चली जाती है। जब कोई व्यक्ति विभिन्न संयागों में एक दिए हुए उदासीनता वक्र के सहारे दो वस्तुओं का उपभोग करता है तो एक वस्तु की दूसरी वस्तु के रुप में सीमान्त महत्त्व अथवा सीमान्त प्रतिस्थापन दर वक्र के साथ घटती चली जाती है। X वस्तु के Y वस्तु के रुप में सीमान्त महत्त्व से अभिप्राय Y वस्तु की उस मात्रा से है जिसे X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के लिए छोड़ा जा सकता है। उदासीनता वक्र के सहारे X वस्तु का Y वस्तु के रुप में सीमान्त महत्त्व घटता जाता है (अथवा Y की X द्वारा सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती जाती है) इसे रेखाकृति द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

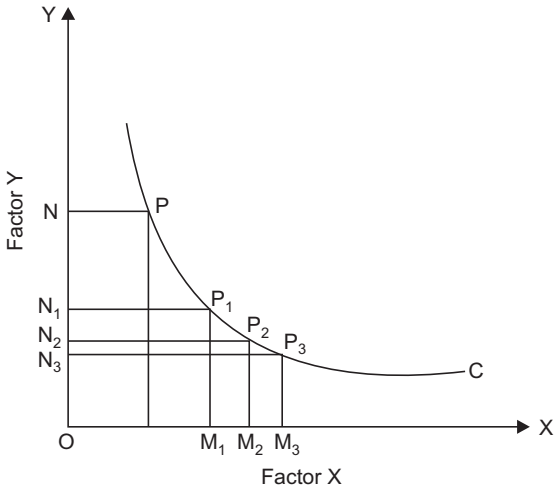

चित्र 2.5

इस रेखाकृति (Fig. 5 देखें) में हम यह मान लेते हैं कि IC वक्र पर स्थित P बिन्दु पर उपभोक्ता X की OM तथा Y की ON मात्राएँ खरीदता है। X की एक और इकाई (अर्थात् MM_1) प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता को Y वस्तु की NN_1 मात्रा का परित्याग करना पड़ेगा। X की अतिरिक्त इकाई (अर्थात् M_1M_2) को प्राप्त करने हेतु उपभोक्ता को अब Y वस्तु की N_1N_2 मात्रा का परित्याग करना पड़ेगा। इसी प्रकार X की एक अन्य इकाई (अर्थात् M_2M_3) को हासिल करने के लिए उसे Y वस्तु की N_2N_3 मात्रा छोडनी पड़ेगी। X की MM_1 मात्रा को Y के रुप में सीमान्त महत्त्व Y की NN_1 बराबर है। इसी प्रकार X की M_1M_2 का Y के रुप में सीमान्त महत्त्व Y की N_1N_2 के बराबर है, लेकिन रेखाकृति से यह स्पष्ट है कि N_1N_2, NN_1 की तुलना में कम है। अत: इसका अभिप्राय यह है कि Y के रुप में X का सीमान्त महत्त्व घट गया है। इसी प्रकार X की M_2M_3 मात्रा का Y के रुप में सीमान्त महत्त्व Y की N_2N_3 के बराबर है। अब N_2N_3, N_1N_2 की तुलना में कम है। इसका अभिप्राय यह है कि Y के रूप में X का सीमान्त महत्त्व और भी घट गया हैं। अत: जैसे जैसे Y की उत्तरोत्तर कम इकाइयों को छोड़कर X की अधिकाधिक इकाइयों को प्राप्त किया जाता है, वैसे वैसे ही Y के रूप में X का सीमान्त महत्त्व घटता जाता है।

उत्पादन साधनों के बारे में भी ह्रासमान सीमान्त महत्त्व की धारणा सत्य उतरती है। Y साधन के रूप में X साधन की सीमान्त महत्त्व Y की वह मात्रा है जिसका X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए परित्याग किया जा सकता है। समोत्पाद वक्र के सहारे Y के रूप में X का सीमान्त महत्त्व घटता चला जाता है। इसे भी उपर्युक्त रेखाकृति द्वारा निदर्शित किया जा सकता है। आइए, हम यह मान लें कि उपर्युक्त रेखाकृति में प्रस्तुत IC वक्र वास्तव में, समोत्पाद वक्र है। X साधन X तथा Y साधन Y को व्यक्त करते हैं। जो कुछ हमने उदासीनता वक्र के बारे में कहा है वह समोत्पाद वक्र पर भी लागू होता है। P बिन्दु पर उत्पादक X की OM तथा Y की ON मात्रा का संयोजन करता है। इस संयोग से उसे 50 इकाइयों के बराबर उपज प्राप्त होती है। अब यदि उत्पादक X साधन की एक और इकाई (अर्थात् MM_1) का उपयोग करना चाहता है लेकिन साथ ही साथ वह उसी समोत्याद वक्र पर रहना चाहता

है लेकिन साथ ही साथ वह उसी समोत्पाद वक्र का रहना भी जारी रखना चाहता है तो उसे Y साधन की NN_1 का परित्याग करना होगा। इस इस प्रकार X की MM_1 मात्रा का सीमान्त महत्त्व Y की NN_1 के बराबर है और X की M_1M_2 की मात्रा का सीमान्त महत्व Y की N_1N_2 मात्रा के समान है। Y के रुप में X की सीमान्त महत्व स्पष्ट: गिर चुका है तथा X की M_2M_3 की मात्रा का सीमान्त महत्त्व Y के रूप में X का सीमान्त महत्त्व और भी गिर गया है। अत: X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए Y की उत्तरोत्तर कम इकाइयों का परित्याग करना पड़ता है। परिणामत: समोत्पाद वक्र के सहारे-सहारे Y के रूप में X का सीमान्त महत्त्व गिरता चला जाता है। यही कारण है कि समोत्पाद वक्र उद्‌गम-बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है।

3. दायीं ओर स्थित समोत्पाद वक्र अधिक ऊँचे स्तर को निरूपित करता है – जिस प्रकार दायीं ओर स्थित उदासीनता वक्र अधिक सन्तुष्टि को व्यक्त करता है, ठीक उसी प्रकार दायीं ओर स्थित समोत्पाद वक्र अधिक ऊँचे स्तर अर्थात् अधिक उत्पादन स्तर को प्रकट करता है। इसे रेखाकृति में प्रदर्शित किया गया है।

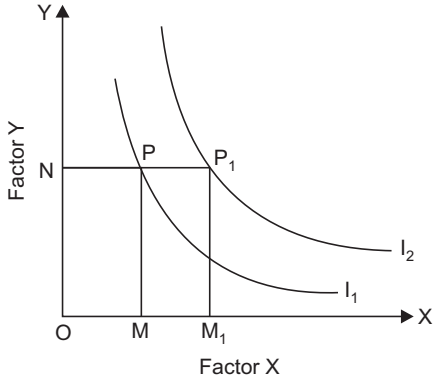

चित्र 2.6

इस रेखाकृति (Fig. 2.6 देखें) में P तथा P_1 बिन्दु क्रमश: I_1 और I_2 समोत्पाद वक्रों पर स्थित है। I_1 वक्र पर स्थित P बिन्दु X की OM तथा Y की ON मात्राओं के संयोग को व्यक्त करता है। इस संयोग से एक निश्चित उपज प्राप्त होती है। I_2 पर स्थित P_1 बिन्दु X की OM_1 तथा Y की ON मात्राओं के संयोग को निरूपित करता है इस संयोग से प्रथमोक्त संयोग की तुलना में अधिक उपज प्राप्त होगी। P_1 संयोग P की तुलना में X की अधिक मात्रा को निरूपित करता है। P_1 संयोग मे X की OM_1 मात्रा है जबकि P संयोग में X की मात्रा केवल OM ही है। चूँकि P_1 संयोग में X की मात्रा अधिक है, अत: P संयोग की तुलना में P_1 संयोग से अधिक उपज प्राप्त होगी, यद्यपि Y की मात्रा दोनों संयोगों में समान ही है (अर्थात् ON है) अत: दायीं ओर स्थित समोत्पाद वक्र अधिक उपज को निरूपित करता है।

4. समोत्पाद वक्र कभी भी एक दूसरे को नहीं काटते – उदासीनता वक्रों की भांति समोत्पाद वक्र कभी भी एक दूसरे को नहीं काट सकते। इसे रेखाकृति में प्रदर्शित किया गया है। इस रेखाकृति (Fig. 2.7 देखें) में 1_1 तथा I_2 दो उादासीनता वक्र हैं। ये एक दूसरे को काटते हुए दिखाए गए हैं। वास्तव में ऐसा हो नहीं सकता है।

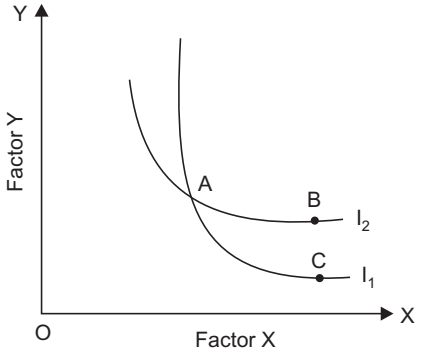

चित्र 2.7

नोट

सच पूछिए तो यह तार्किक अनर्गलता का ही उदाहरण है। B बिन्दु I_2 उदासीनता वक्र पर X तथा Y का एक संयोग निरूपित करता है। इसी प्रकार, C बिन्दु उदासीनता वक्र I_1 पर X तथा Y के अन्य संयोग को व्यक्त करता है। अत: C का संयोग की तुलना में B संयोग उपभोक्ता को अधिक सन्तुष्टि प्रदान करता है दूसरे शब्दों में B संयोंग C संयोग की तुलना में बेहतर है। लेकिन A बिन्दु उसी I_2 वक्र पर स्थित है जिस पर B बिन्दु भी है। अत: A संयोग उपभोक्ता के लिए उतना ही अच्छा है जितना B संयोग A इसी प्रकार, A बिन्दु उसी वक्र I_1 पर स्थित है जिस पर C भी है। अत: यह संयोग उतना ही अच्छा है जितना C संयोग A चूँकि A बिन्दु दोनों ही उदासीनता वक्रों पर स्थित है, इसका अभिप्राय यह हुआ कि B,C के बराबर है अथवा B उतना ही अच्छा है जितना C लेकिन यह वास्तव में एक अयुक्तिक निष्कर्ष ही है। अत: दो उदासीनता वक्र एक दूसरे को नहीं काट सकते। इसी तर्क के आधार पर हम यह भी सिद्ध कर सकते हैं कि दो समोत्पाद वक्र एक दूसरे को नहीं काट सकते। B बिन्दु समोत्पाद वक्र I_2 पर स्थित है।

इसी प्रकार C बिन्दु समोत्पाद वक्र I_1 पर स्थित है अत: C संयोग की तुलना में B संयोग अधिक उत्पादक है। लेकिन A संयोग भी उतना ही उत्पादक है जितना कि B संयोग क्योंकि ये दोनों संयोग समोतपाद वक्र पर I_2 स्थित हैं। इसी प्रकार A संयोग भी उतना ही उत्पादक है जितना कि C संयोग क्योंकि ये दोनों ही संयोग I_1 समोत्पाद वक्र पर स्थित है। चूंकि A दोनों में ही उभयनिष्ठ है, अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचतें है कि C संयोग भी उतना ही उत्पादक है जितना कि B संयोग। लेकिन यह निष्कर्ष स्पष्टत: असंगत है। यह निष्कर्ष उपर्युक्त विशेषता नं. 3 से मेल नहीं खाता। जब कि दायीं ओर स्थित समोत्पाद वक्र अधिक उत्पादन को निरूपित करता है। अत: हमारा निष्कर्ष यह है कि समोत्पाद वक्र एक दूसरे को नहीं काट सकते।

5. समोत्पाद वक्र रिज रेखाओं (अथवा मेड़ रेखाओं) को अंकित करने में सहायक होते हैं – समोत्पाद वक्रों की एक अन्य विशेषता यह है कि ये वक्र व्यावसायिक फर्म के लिए उपयुक्त उत्पादन क्षेत्र का सीमांकन करते हैं अर्थात् ये वक्र फर्म को यह बताते हैं कि किन सीमाओं के बीच उत्पादन करना फर्म के लिए लाभदायक होगा। जैसा कि विदित है, ये वक्र पीछे की ओर झुकते हैं। और इनके दोनों सिरे ऊपर की ओर चढ़ते हैं। इसे निम्नांकित रेखाकृति द्वारा प्रदर्शित किया गया हैं।

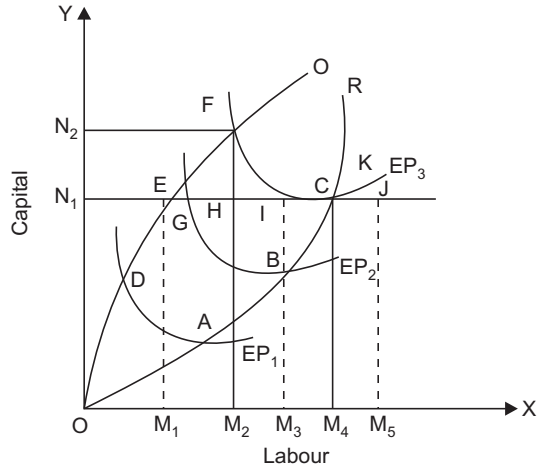

चित्र 2.8

इस रेखाकृति (Fig. 2.8 देखें) में EP_1, EP_2 तथा EP_3 नामक तीन समोत्पाद वक्र दिखाए गए हैं। ये सभी पीछे की ओर झुकते हैं और इनके दोनों सिरे ऊपर की ओर चढ़ते हैं। EP_1 दो बिन्दुओं D तथा A पर पीछे की ओर झुकता है। इसी प्रकार EP_2 एवं EP_3 वक्र E,B तथा F,C बिन्दुओं पर पीछे झुकते हैं। A,B और C बिन्दुओ को जोड़ने से OR रेखा प्राप्त होती है। इसी प्रकार D,E तथा F को जोड़ने से OQ रेखा प्राप्त होती है। प्राविधिक भाषा में OR तथा OQ रेखाओं को रिज रेखाएँ कहा जाता है। ये दोनों रेखाएँ उस क्षेत्र को सीमांकित करती हैं जिसके भीतर रहकर फर्म लाभदायक उत्पादन कर सकती है। समोत्पादक वनों के वे भाग जो रिज रेखाओं के भीतर आते हैं, लाभदायक

उत्पादन के लिए उपयुक्त है लेकिन जो भाग रिज रेखाओं के बाहर पड़ते हैं, वे लाभदायक उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं है।

नोट

रेखाकृति में श्रम की विभिन्न मात्राओं को X अक्ष के सहारे व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार पूँजी की विभिन्न मात्राओं को Y अक्ष के साथ-साथ प्रकट किया गया है श्रम की OM_4 तथा पूँजी की ON_1 मात्राओं के संयोग से एक ऐसा उत्पादन होता है। जिसे वक्र EP_3 द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। यदि फर्म EP_3 वक्र के सहारे नीचे की ओर प्रस्थान करती है तो वह पूँजी का श्रम से अधिकाधिक प्रतिस्थापन करती चली जाएगी अर्थात् वह श्रम का अधिक और पूँजी का कम प्रयोग करेगी, यहाँ तक कि वह EP_3 वक्र पर स्थित C बिन्दु पर पहुँच जाएगी। C बिन्दु श्रम का OM_4 तथा पूँजी की ON_1 मात्राओं को व्यक्त करता है। चूँकि फर्म EP_3 वक्र पर ही रहती है, अत: उत्पादन स्थिर रहता है और उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अब यदि पूँजी की मात्रा को ON_1 पर स्थिर रखते हुए हम श्रम की मात्रा को C बिन्दु के आगे बढ़ाते हैं तो कुल उत्पादन में कमी हो जाएगी। उदाहरणार्थ, यदि श्रम की मात्रा को OM_5 तक बढ़ा दिया जाता है तो फर्म J बिन्दु पर पहुँच जाएगी। J बिन्दु EP_3 वक्र से नीचे स्थित हैं यह इस बात का प्रतीक हैं कि J बिन्दु पर उत्पादन में गिरावट हुई हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि उत्पादन में क्यों गिरावट आई? इसका कारण यह है कि C बिन्दु के दायीं ओर श्रम की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है। परिणामत: C बिन्दु के दायीं ओर श्रम की अतिरिक्त मात्राओं को लगाने से उत्पादन में ह्रास होता है दूसरे शब्दों में C बिन्दु पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य है लेकिन C बिन्दु के बायीं ओर श्रम की सीमान्त उत्पादकता धनात्मक है क्योंकि पूँजी को ON_1 पर स्थिर रखते हुए यदि हम C बिन्दु के बीयीं ओर श्रम की मात्राओं को बढ़ाते जाएँ तो उत्पादन में वृद्धि होती चली जाएगी। इससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि C बिन्दु के बीयीं ओर श्रम की सीमान्त उत्पादकता धनात्मक होती है। मान लीजिए कि फर्म G बिन्दु पर है। इस बिन्दु पर फर्म OM_1 श्रम और ON_1 पूँजी लगा रही है। G बिन्दु पर होने वाला उत्पादन EP_1 वक्र द्वारा व्यक्त उत्पादन से अधिक होगा। अब मान लीजिए कि फर्म G से चलकर H बिन्दु पर पहुँचती है। H बिन्दु पर फर्म श्रम की मात्रा को OM_1 से बढ़ाकर OM_2 कर देती है यद्यपि पूँजी की मात्रा ON_1 पर ही स्थिर रहती है। यदि H बिन्दु में से गुजरता हुआ एक नया समोत्पाद वक्र बनाया जाए तो वह एक ऐसे उत्पादन को प्रकट करेगा जो EP_2 वक्र द्वारा व्यक्त उत्पादन से अधिक होगा। इसी प्रकार, यदि फर्म H से चलकर I बिन्दु पर पहुंचती है तो पहले की अपेक्षा उसका उत्पादन बढ़ जाएगा। स्मरणीय बात यह है कि C बिन्दु पर श्रम की सीमान्त उत्पादक शून्य है, C के दायीं ओर यह ऋणात्मक है और C के बायीं ओर यह धनात्मक है। अब यदि फर्म C बिन्दु के दायीं ओर OM_5 तक श्रम की मात्रा को बढाती है यद्यती पूँजी की मात्रा ON_1 पर ही स्थिर रहती है, तो वह J बिन्दु पर पहुँच जाएगी। J बिन्दु EP_3 वक्र से नीचे स्थित है अत: यह बिन्दु कम उत्पादन को व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में श्रम, की अधिक मात्रा के बावजूद उत्पादन में कमी हो जाती है। यदि फर्म उत्पादन की इस गिरावट को रोकना चाहती है अथवा C बिन्दु के दायीं ओर उत्पादन को पुराने स्तर पर ही बनाए रखना चाहती है तो उसे दानों साधनों (अर्थात् श्रम एवं पूँजी) की अतिरिक्त मात्राओं को लगाना होगा। उदाहरणार्थ, यदि फर्म EP_3 वक्र पर स्थित K बिन्दु पर पहुँचना चाहती है तो उसे श्रम की OM_5 और पूँजी की ON_1 से अधिक मात्राओं का प्रयोग करना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में C बिन्दु के दायीं ओर उत्पादन के पुराने स्तर को बनाए रखने के लिए फर्म को दोनों साधनों की अधिक मात्राओं का प्रयोग करना होगा। अत: C बिन्दु के दायीं ओर जाना फर्म के लिए गैर-आर्थिक (अथवा हानिकारक) होगा। वास्तव में C बिन्दु श्रम एवं पूँजी के युक्तिक संयोगों की बाह्य सीमा को व्यक्त करता है क्योंकि इस बिन्दु पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य है। C के दायीं ओर गैर आर्थिक उत्पादन का क्षेत्र प्रारंभ हो जाता है। कोई भी फर्म उस क्षेत्र में प्रविष्ट होना पसंद नहीं करेगी।

इसी प्रकार EP_3 वक्र के संदर्भ में F बिन्दु श्रम एवं पूँजी के युक्तिक संयोग की सीमा को व्यक्त करता है क्योंकि इस बिन्दु पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता शून्य के बराबर है F बिन्दु के बायीं ओर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक है। अत: F बिन्दु के बायीं ओर जाना फर्म के लिए उचित नहीं होगा क्योंकि F बिन्दु के बायीं ओर का क्षेत्र गैर-आर्थिक उत्पादन का क्षेत्र है। इस क्षेत्र में फर्म को यदि पुराना उत्पादन स्तर बनाए रखना है तो उसे श्रम एवं पूँजी दोनों की अतिरिक्त मात्राओं का प्रयोग करना होगा।

नोट

जहाँ तक EP_2 वक्र का सम्बन्ध है, C एवं F बिन्दु आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र की बाह्य सीमाओं को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार, E तथा B बिन्दु समोत्पाद वक्र EP_2 की और D एवं A बिन्दु EP_1 वक्र की बाह्य सीमाओं को प्रकट करते हैं। रेखाकृति में दो रिज रेखाओं को दिखाया गया है। ये हैं OR तथा OQ। इन दोनों रेखाओं के बीच स्थित क्षेत्र आर्थिक उत्पादन का क्षेत्र है। लेकिन इन दोनों के बाहर पाया जाने वाला क्षेत्र गैर-आर्थिक है। दूसरे शब्दों में, यह क्षेत्र आर्थिक उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं है।

2.5 समोत्पादक वक्र तथा सर्वोत्तम साधन संयोग

हमने देखा था कि किस प्रकार उदासीनता वक्र उपभोक्ता को दो वस्तुओं का एक ऐसा संयोग प्रदान करने में सहायक होते हैं जिससे उसे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है इसी प्रकार, समोत्पाद वक्र भी उत्पादक को एक ऐसा संयोग देने में सहायक होते हैं जिससे वह न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन कर सकता है। इस प्रकार के साधन-संयोग को सर्वोतम अथवा अनुकूलतम संयोग कहा जाता है। वास्तव में, एक निश्चित स्तर के उत्पादन को प्राप्त करने के लिए उत्पादक के समक्ष कई वैकल्पित साधन संयोग होते हैं। लेकिन युक्तिक स्वभाव का संगठनकर्ता उत्पादन को "अनुकूलतम" अथवा "न्यूनतम लागत" संयोग की सहायता से करना चाहेगा। उत्पादक विभिन्न साधनों का सामंजस्य (मिलन) इस ढंग से करेगा कि उत्पादन चाहे कितना ही हो, लेकिन प्रति इकाई लागत न्यूनतम होनी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति में समोत्पाद वक्र उत्पाद को बड़ी मूल्यवान सहायता देते हैं। दूसरे शब्दों में समोत्पाद वक्र फर्म को सन्तुलनावस्था प्राप्त करने में ठीक उसी प्रकार सहायक होते हैं। जिस प्रकार उदासीनता वक्र उपभोक्ता को सन्तुलन की प्राप्ति में सहायता देते हैं। सत्य तो यह है कि उत्पादन सिद्धान्त में समोत्पाद वक्रों को बिलकुल वही स्थान प्राप्त है जो उपभोग सिद्धान्त में उदासीनता वक्रों को दिया जाता है।

उपभोक्ता को सन्तुलनावस्था प्राप्त करने हेतु दो उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। (*i*) उदासीनता मानचित्र तथा (*ii*) बजट अथवा कीमत रेखा। ठीक इसी प्रकार सन्तुलनावस्था को प्राप्त करने के लिए फर्म को भी दो उपकरणों की जरूरत पड़ती है। (*i*) समोत्पाद मानचित्र तथा (*ii*) सम लागत रेखा। दूसरे शब्दों में दोनों उपकरणों के बिना फर्म अनुकूलन संयोग अथवा न्यूनतम लागत संयोग प्राप्त नहीं कर सकती।

समोत्पाद मानचित्र की व्याख्या ऊपर पहले ही की जा चूकी है। यह मानचित्र वस्तु की विभिन्न मात्राओं का उत्पादन करते हेतु उत्पादक के समक्ष जो विभिन्न तकनीकी संभावनाएँ होती हैं, उनका विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत करता है। यही नहीं, यह मानचित्र एक निश्चित स्तर का उत्पादन करने के लिए विभिन्न वैकल्पिक साधन-संयोगों को भी फर्म के समक्ष प्रस्तुत करता है।

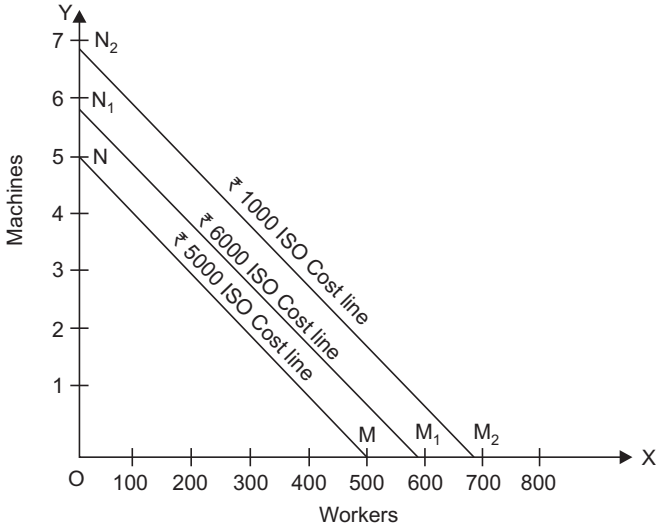

चित्र 2.9

सम-लागत रेखा की धारणा भी कोई बिलकुल नयी धारण नहीं है। उत्पादन के सिद्धान्त में इस रेखा को वही स्थान प्राप्त है जो उपयोग सिद्धान्त में बजट रेखा को दिया जाता है। सम-लागत रेखा दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को व्यक्त करती है जिन्हें फर्म एक दी हुई राशि से दी हुई कीमतों पर खरीद सकती है। इस प्रकार सम-लागत रेखा दो बातों को व्यक्त करती है- 1. दोनों साधनों की कीमतें, तथा 2. फर्म द्वारा किया जाने वाला कुल व्यय। अब हम एक काल्पनिक उदाहरण के आधार पर सम लागत रेखा बनाएंगे। आइए, हम मान लें कि फर्म के पास 5000 रुपये की धनराशि है जिसे वह दो साधनों (अर्थात् मशीनों एवं श्रमिकों) पर व्यय करना चाहती है। यह भी मान लीजिए कि एक मशीन की कीमत, 1,000 रुपये है और एक श्रमिक की दैनिक मजदूरी 10 रुपये है। स्पष्टतया, 5,000 रुपये के व्यय से फर्म या तो 5 मशीनें खरीद सकती सकती है और/या OM 500 श्रमिकों को और ON 5 मशीनों को व्यक्त करते है। यदि हम N तथा M बिन्दुओं को जोड़ दें तो हमें NM सम-लागत रेखा प्राप्त होगी। यह NM सम लागत रेखा मशीनों तथा श्रमिकों के उन सभी संयोगों को प्रदर्शित करती है जो फर्म दी हुई कीमतों पर 5000 रुपये की धनराशि से खरीद सकती हैं। सम-लागत रेखा सदैव एक सीधी रेखा होती है। यह सीधी सम-लागत रेखा दो बातों को व्यक्त करती है। 1. क्रेता फर्म का सम्बन्धित उत्पादन साधनों की बाजार कीमतों पर कोई नियन्त्रण नहीं है तथा 2. फर्म चाहे दोनों साधनों की कितनी ही इकाइयाँ खरीदे, लेकिन इसका साधनों की कीमतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। (Fig. 2.9 देखें)

अब यदि फर्म अपने व्यय को 5,000 रुपये से बढ़ाकर 6,000 रुपये कर लेती है तो सम-लागत रेखा दायीं ओर खिसक जाएगी, बशर्ते दोनों (अर्थात मशीनों एवं श्रमिकों) की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। नयी सम-लागत रेखा अब $N_1 M_1$ होगी। यदि फर्म के व्यय को और अधिक बढ़ाकर 7,000 रुपये कर दिया जाता है तो सम-लागत रेखा और दायीं ओर खिसक जाएगी, लेकिन शर्त यह है कि दोनों साधनों की कीमतों में कोई परिवर्तन न हो। इस प्रकार, यदि फर्म के व्यय को उत्तरोतर बढ़ाया जाता है तो सम-लागत रेखा बराबर बायीं ओ खिसकती रहेगी। लेकिन यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण बात स्मरणीय है। उपर्युक्त रेखाकृति में प्रदर्शित विभिन्न सम लागत रेखाएँ एक दूसरे के समानान्तर है। इसका कारण यह है कि फर्म के व्यय में वृद्धि के बावजूद दोनों साधनों की कीमतें अपरिवर्तित ही रहती है।

सम लागत रेखा की ढाल दो बातों से निर्धारित होती है: 1. फर्म का व्यय, तथा 2. दोनों साधनों (अर्थात् मशीनों एवं श्रमिकों) की कीमतें। यह सम-लागत रेखा श्रम की कीमत (अर्थात मजदूरी) तथा मशीनों की कीमत के अनुपात को व्यक्त करती है। उपर्युक्त रेखाकृति में सम-लागत रेखा NM की हैं।

अर्थात् मजदूरी तथा P_m मशीनों की कीमत को व्यक्त करता है। यदि दोनों में किसी एक साधन की कीमत में परिवर्तन होता है तो सम-लागत रेखा की ढाल में समानुपातिक परिवर्तन होगा।

अब हम यह बताएँगे कि समोत्पादन वक्रों एवं सम-लागत रेखाओं की सहायता से फर्म किसी प्रकार अनुकूलतम (सर्वोत्तम) साधन-संयोग अथवा न्यूनतम लागत साधन संयोग को प्राप्त करती है। इसे रेखाकृति (Fig. 2.10) में स्पष्ट किया गया है।

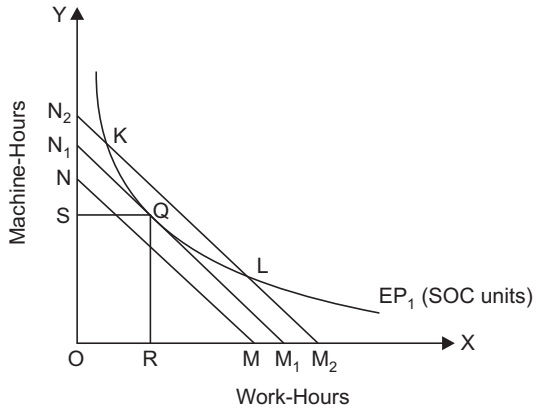

चित्र 2.10

नोट

आइए, हम यह मान लें कि फर्म 500 इकाइयों का उत्पादन करने का निर्णय लेती है। इसे रेखाकृति में समोत्पाद वक्र EP_1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह तो स्वाभाविक ही है कि फर्म इस उत्पादन को न्यूनतम लागत पर करना चाहेगी क्योंकि ऐसा करके ही फर्म अधिकतम लाभ कमा सकती है। दूसरे शब्दों में, इस उत्पादन स्तर को प्राप्त करने करने हेतु फर्म दोनों साधनों के अनुकूलतम संयोग को प्राप्त करने का प्रयास करेगी। जैसा कि रेखाकृति में दिखाया गया है, 500 इकाइयों के इस उत्पादन को फर्म K, Q, L जैसे किसी भी साधन-संयोग से प्राप्त कर सकती है क्योंकि ये सभी साधन संयोग उसी EP_1 समोत्पाद वक्र पर स्थित है। लेकिन फर्म उस साधन संयोग का चयन करेगी जिस पर सम-लागत रेखा N_1M_1 समोत्पाद वक्र EP_1 को स्पर्श करती है। इस रेखाकृति में Q साधन संयोग अनुकूलतम अथवा न्यूनतम लागत संयोग है क्योंकि इस संयोग की सहायता से फर्म 500 इकाइयों का उत्पादन न्यूनतम लागत पर कर सकती है। समोत्पाद वक्र EP_1 पर स्थित किसी अन्य बिन्दु (उदाहरणार्थ K तथा L) पर उत्पादन लागत न्यूनतम नहीं हो सकती। ये दोनों ही बिन्दु अधिक ऊँची सम लागत रेखा N_2M_2 पर स्थित है। यदि इन साधन संयोगों से 500 इकाइयों का उत्पादन किया जाता है तो लागतें ऊँची होंगी। अत: फर्म K तथा L साधन संयोगों का चयन नहीं करेगी। Q ही एक ऐसा साधन-संयोग है जो 500 इकाइयों का उत्पादन करने के लिए अनुकूलतम अथवा न्यूनतम लागत-संयोग का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरे शब्दों में, 500 इकाइयों का उत्पादन करने के लिए फर्म OR कार्य घण्टों का संयोजन SO मशीनी घण्टों के साथ करती है। जिस बिन्दु पर समोत्पाद वक्र सम लागत रेखा को स्पर्श करता है वही बिन्दु एक निश्चित स्तर का उत्पादन करने के लिए अनुकूलतम अथवा न्यूनतम लागत संयोग का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ स्पर्शिता का अभिप्राय न्यूनतम लागत से है।

अनुकूलतम साधन-संयोग की व्याख्या तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) एवं दोनों साधनों के कीमत अनुपात से भी की जा सकती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि किसी विशिष्ट बिन्दु पर समोत्पाद वक्र की ढाल पर बिन्दु पर तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर को भी व्यक्त करती हैं। इसी प्रकार किसी विशिष्ट बिन्दु पर सम-लागत रेखा की ढाल दोनों साधनों के कीमत अनुपात को भी प्रकट करती है। फर्म का अनुकूलतम साधन संयोग उस बिन्दु द्वारा व्यक्त किया जाता है जहाँ पर समोत्पाद वक्र एवं सम-लागत रेखा दोनों की ढाल एक समान होती है। इसे ऐसे भी व्यक्त किया जा सकता है कि फर्म का अनुकूलतम संयोग उस बिन्दु पर स्थित होगा जहाँ पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) तथा कीमत-अनुपात एक दूसरे के बराबर होते है। K बिन्दु पर फर्म 500 इकाइयों का उत्पादन नहीं करेगी क्योंकि इस बिन्दु पर मशीनी घण्टों के स्थान पर कार्य घण्टों की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर दोनों साधनों के कीमत अनुपात से अधिक है। K बिन्दु पर समोत्पाद वक्र EP_1 की ढाल सम लागत रेखा N_2M_2 पर स्थित उसी बिन्दु की ढाल से अधिक है। अत: फर्म मशीन घण्टों के स्थान पर कार्य घण्टों का अधिकाधिक प्रयोग करेगी (अथवा मशीनी घण्टों के स्थान पर कार्य घण्टों से प्रतिस्थापना करेगी) और EP_1 वक्र पर नीचे की ओर चलती चली जाएगी। Q बिन्दु पर मशीनी घण्टों के स्थान पर कार्य घण्टों की प्रतिस्थापना की सीमान्त दर दोनों साधनों के कीमत अनुपात के बराबर है। इस बिन्दु पर EP_1 समोत्पाद वक्र एवं सम-लागत रेखा N_1M_1 दोनों की ढालें बराबर है। अत: Q साधन संयोग ही वास्तव में अनुकूलतम संयोग है। फर्म L बिन्दु पर 500 इकाइयों का उत्पादन करना नही चाहेगी क्योंकि यह बिन्दु अधिक ऊँची सम-लागत रेखा N_2M_2 पर स्थित हैं। इस L बिन्दु पर मशीनी घण्टों के स्थान पर मशीनी घण्टों का अधिकाधिक प्रयोग करेगी और यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक फर्म अन्तत: Q बिन्दु पर नहीं पहुँच जाती है। इस प्रकार Q बिन्दु समोत्पादन वक्र EP_1 तथा सम-लागत रेखा N_1M_1 की स्पर्शिता को व्यक्त करते है। इस स्पर्शिता बिन्दु पर समोत्पाद वक्र एवं सम-लागत रेखा दोनों की ढालें बराबर हैं। समोत्पाद वक्र की ढाल दोनों साधनों की सीमान्त भौतिक उत्पादकताओं के अनुपात को प्रकट करती है। यह ढाल दोनों साधनों की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को भी व्यक्त करती है। इसके विपरीत, सम-लागत रेखा की ढाल दोनों साधनों के कीमत अनुपात का प्रतिनिधित्व करती है। यह मानते हुए कि C मशीनी घण्टों तथा L कार्य घण्टों को व्यक्त करते हैं।

समलागत-वक्र (Isocost Curves)

दिए हुए साधनों के संयोग से फर्म के उत्पादन की संभावनाओं को प्रकट करने वाले सम मात्रा वक्रों का अध्ययन कर लेने के बाद हम साधनों की कीमतों पर आते हैं जिन्हें समलागत-वक्र कहते हैं। इन वक्रों को व्यय-रेखाएँ, लागत

नोट

कीमत रेखाएँ, साधन-लागत रेखाएँ, स्थिर व्यय रेखाएँ आदि भी कहते है। प्रत्येक समलागत-वक्र दो साधनों के भिन्न-भिन्न संयोगों को प्रकट करता है जिन्हें एक दी हुई मुद्रा की मात्रा से प्रत्येक साधन की दी हुई कीमत पर खरीद सकती है।

चित्र में तीन समलागत वक्र दिखाए गए हैं जो क्रमशः रु. 50, 75 और 100 के कुल व्यय को प्रकट करते हैं। फर्म रु. 75 से पूँजी की OC या श्रम की OD मात्रा प्राप्त कर सकती है। OC मात्रा OD की 2/3 है। जिसका अभिप्राय है कि पूँजी की एक इकाई से श्रम की एक इकाई की कीमत 1/3 गुणा कम है। CD रेखा पूँजी और श्रम के कीमत अनुपात को प्रकट करती है। यदि साधनों की कीमतें स्थिर रहें और कुल व्यय बढ़ा दिया जाए तो समलागत-वक्र ऊपर की ओर दाएँ को सरक जाएगा जैसे CD के समानान्तर EF; और यदि कीमतों को स्थिर रखते हुए कुल व्यय घटा दिया जाए तो वक्र नीचे की ओर बाएँ को सरक जाएगा जैसे AB। समलागत-वक्र सरल रेखाएँ होती हैं क्योंकि साधन कीमतें स्थिर रहती हैं, चाहे फर्म का कुल व्यय कुछ भी हो। समलागत-वक्र दो आगत दो साधनों के सभी संयोगों के बिन्दु-पथ का वर्णन करते हैं। जिनसे कुल लागत समान होती है। यदि श्रम (L) की प्रति इकाई लागत W है पूँजी (C) की प्रति इकाई लागत तय हो तो कुल लागतः $TC = WL + rCA$ समलागत रेखा की ढलान श्रम और पूँजी की कीमतों का अनुपात होती हैः W/y।

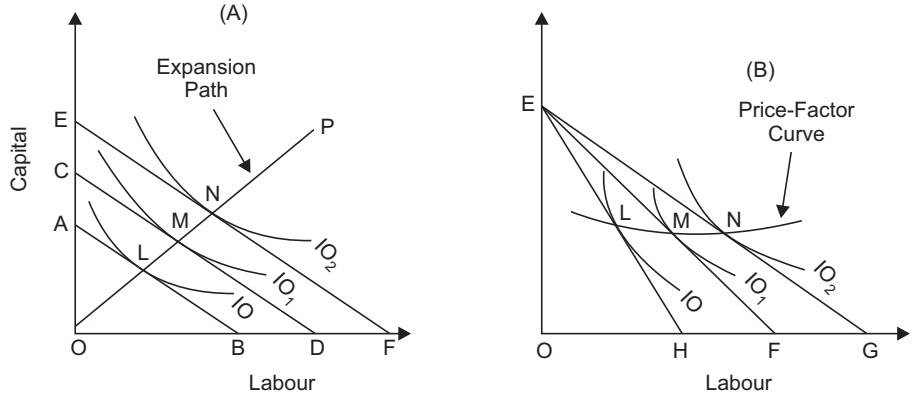

चित्र 2.11

वह बिन्दु जिस पर समलागत रेखा और समलागत वक्र एम दूसरे को स्पर्श करती है, एक निश्चित उत्पादन के लिए न्यूनतम-लागत संयोग को प्रकट करता है। यदि सब स्पर्श बिन्दुओं जैसे L, M, N को मिला दिया जाए तो इससे फर्म का न्यूनतम-व्यय वक्र या फर्म का विस्तार मार्ग OP बनता है। यह प्रकट करता है कि फर्म का विस्तार होने पर दो साधनों के अनुपातों में किस प्रकार परिवर्तन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ चित्र में न्यूनतम लागत पर 100 (IQ_1) इकाइयों या 300 (IQ_2) इकाइयों के उत्पादन के लिए दो साधनों, श्रम और पूँजी का अनुपात 200 (IQ_1) इकाइयों के लिए प्रयोग किए जाने वाले श्रम और पूँजी के अनुपात से भिन्न है। (Fig. 2.11 देखें)

उदासीनता वक्र विश्लेषण के कीमत आय वक्र की भाँति, यदि एक साधन की कीमत स्थिर रहे और दूसरा साधन सस्ता हो जाए तो समलागत रेखा दाई ओर फैल जाएगी। यदि एक साधन दूसरे की अपेक्षा महँगा हो जाता है, तो समलागत रेखा बाई ओर अन्दर को सिकुड जाएगी। पूँजी की कीमत दी होने पर, यदि श्रम की कीमत कम हो जाती है, तो समलागत रेखा EF चित्र के पैनल में दाई ओर फैलकर EG हो जाएगी, और यदि श्रम की कीमत बढ़ जाती है, तो समलागत रेखा EF बाई ओर अन्दर को सिकुडकर EH हो जाएगी। यदि संतुलन बिन्दुओं L, M, N को एक रेखा द्वारा मिलाया जाए तो वह कीमत-साधन वक्र कहलाती है।

2.6 तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर का नियम (The Principle of Marginal Rate of Technical Substitution)

नोट

तकनीकी स्थापन्नता की सीमान्त दर का नियम (MRTS) उत्पादन फलन पर आधारित है, जहाँ दो साधनों को परिवर्तीय अनुपातों में इस ढंग से स्थानापन्न किया जा सकता है कि उत्पादन के स्थिर स्तर का उत्पादन किया जा सके।

दो साधनों C (पूँजी) और L (श्रम) में तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर ($MRTS_{LC}$) वह है जिस पर उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन किए बिना वस्तु X के उत्पादन में C के स्थान पर L को स्थानापन्न किया जा सकता है। हम जैसे-जैसे सममात्रा-वक्र पर नीचे की ओर दाएँ को आते हैं, तो उस वक्र पर प्रत्येक बिन्दु पूँजी के स्थान पर श्रम की स्थानापन्नता को व्यक्त करता है।

MRTS पूँजी की उन निश्चित इकाइयों की हानि है जिनकी उस वस्तु पर श्रम की अतिरिक्त इकाइयों से ठीक क्षति-पूर्ति हो जाएगी। दूसरे शब्दों में, पूँजी के लिए श्रम की तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर एक बिन्दु पर सममात्रा-वक्र की ढलान है। इसलिए,

सममात्रा वक्र की ढलान = $MRTS_{LC} = -\Delta C/\Delta L$. इसे सममात्रा अनुसूची की सहायता से समझा जाता सकता है।

संयोग	श्रम	पूँजी	$MRSTS_{LC}$	उत्पादन
1	5	9	—	100
2	10	6	3 : 5	100
3	15	4	2 : 5	100
4	20	3	1 : 5	100

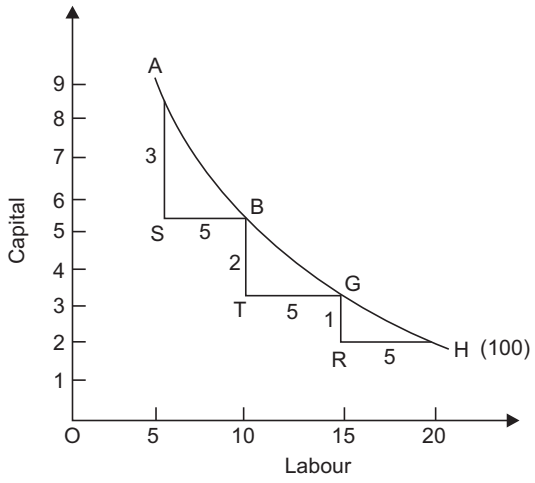

चित्र 2.12

तालिका यह प्रदर्शित करती है कि उत्पादन को 100 इकाइयों पर स्थिर रखने के लिए दूसरे संयोग में पूँजी की 3 इकाइयाँ घटा देने पर श्रम की 5 अतिरिक्त इकाइयों की आवश्यकता है, $MRTS_{LC} = 3 : 5$. तीसरे संयोग में पूँजी की 2 इकाइयों की हानि की क्षतिपूर्ति श्रम की 5 इकाइयों से होती है, इत्यादि।

चित्र (Fig. 2.12 देखें) में तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर बिन्दु B पर AS/SB, बिन्दु G पर BT/TG और बिन्दु H पर GR/RH है। तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर को यों भी व्यक्त कर सकते हैं कि यह श्रम के सीमान्त भौतिक उत्पादन का पूँजी के सीमान्त भौतिक उत्पादन से अनुपात है।

नोट

या, $$MRTS_{LC} = MP_L/MP_C$$

यद्यपि उत्पादन स्थिर रहता है, तो भी स्थानापन्नता की प्रक्रिया परिवर्तन लाती है। पूँजी की कुछ इकाइयाँ हटाने से उत्पादन कम होता है, जो श्रम की अतिरिक्त इकाइयाँ लगाने से पुन: प्राप्त हो जाता है इस प्रकार,

पूँजी की इकाइयाँ हटाने से उत्मादन में कमी ($dC \times MPc$) बराबर है उत्पादन में श्रम की अतिरिक्त इकाइयाँ लगाने से उत्पादान में लाभ ($dL \times MP$)। इसलिए $-dC/dL = MP_L/MP_C$ – यहाँ MP_L और MP_C श्रम और पूँजी की सीमांत उत्पादकताएँ हैं।

इन संबधों को गणितीय रूप में व्यक्त किया जाा सकता है। एक दिए हुए उत्पादन q के लिए, सममात्रा वक्र पर उत्पादन फलन है: $q = f(C,L)$।

सममात्रा वक्र की ढलान है: $MRTS_{LC} = -dC/dL$, जहाँ d परिवर्तन है। उत्पादन फलन का कुल अवकलन है,

$$dg = MP_C \,.\, dC \times MP_L \,.\, dL.$$

परन्तु एक सममात्रा वक्र के साथ गति के लिए उत्पादन स्थिर है। इस प्रकार ऊपर के समीकरण में $dq = O$ स्थानापन्न करके,

$$O = MP_C dC \times MP_L \,.\, dL$$

क्योंकि परिभाषा द्वारा $MRTS_{LC} = -dC/dL$

$$MRTS_{LC} = \quad -dC/dL = MP_L MP_C$$

अत: तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर बराबर है श्रम की पूँजी के साथ सीमांत उत्पादकता के अनुपात के।

चित्र में, सममात्रा वक्र AH के q पर ढलान = BT/TG मान लीजिए कि पूँजी की BT इकाइयाँ हटाने से, उत्पादन की एक इकाई कम हो जाती है। यह पूँजी की सीमांत उत्पादकता का उलट है, अर्थात् $1/MP_C$ और उत्पादन की इस इकाई की हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए श्रम की TG इकाइयाँ चाहिए। यह श्रम की सीमांत उत्पादकता का उलट है। अर्थात् $1/MP_L$ इस प्रकार बिन्दु q पर

$$MRTS_{LC} = q = \frac{1}{MP_C} \div \frac{1}{MP_L} = \frac{MP_L}{MP_C}$$

चित्र में सममात्रा वक्र AH यह प्रकट करता है कि वस्तु X की 100 इकाइयों के उत्पादन के लिए साधन संयोग में जैसे-जैसे श्रम की इकाइयाँ उत्तरोत्तर बढ़ाई जाती हैं पूँजी की इकाइयों में कमी कम होती जाती है। इसका मतलब है कि तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्तर दर घटती जाती है। तकनीकी स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर का यह सिद्धान्त उदासीनता के स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर के नियम के समानान्तर है तालिका और चित्र से साधनों की घटती सीमान्त स्थानापन्न योग्यता की प्रवृत्ति स्पष्ट है। $MRTS_{LC}$ 3:5 से 1:5 तक घटती जाती है, जबकि चित्र में, अनुलम्ब रेखाओं के नीचे सममात्रा-वक्रों पर त्रिभुज छोटे होते जाते हैं, ज्यों-ज्यों हम सममात्रा-वक्र पर नीचे की ओर आते हैं $GR < BT < AS$। जैसा कि ऊपर परिभाषा दी जा चुकी है, पूँजी के लिए श्रम की MRTS उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकताओं के अनुपात के बराबर होती है। उत्पादन को स्थिर रखने के लिए पूँजी की इकाइयों की हानि की क्षतिपूर्ति के लिए ज्यों-ज्यों श्रम की अधिक इकाइयों को प्रयोग किया जाता है, त्यों-त्यों श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता घटती है और पूँजी की सीमान्त भौतिक उत्पादकता बढ़ती है। इसलिए जब पूँजी के स्थान पर श्रम को स्थानापन्न करते हैं, तो तकनीकी स्थानापन्नता की दर घटती जाती है। इसका अभिप्राय है कि सममात्रा-वक्र हर बिन्दु पर मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है।

सीमाएँ – तकनीकी स्थानापन्नता की घटती सीमान्त दर का नियम इस मान्यता पर आधारित है कि श्रम और पूँजी को अस्थिर दर पर स्थानापन्न किया जा सकता है। यह मान्यताएं वास्तविक हैं क्योंकि उत्पादक इकाइयों में ऐसी दशाएं होती हैं। पर इस नियम की दो सीमाएं भी हैं: एक, जहाँ श्रम और पूँजी में स्थानापन्नता बिलकुल संभव न हो और दूसरे, जहाँ वे एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न हों। इनकी विवेचना नीचे की जा रही है।

नोट

1. **साधनों का निश्चित अनुपातों में प्रयोग –** चित्र (Fig. 2.13 देखें) में उत्पादन की तकनीकी स्थितियाँ निश्चित अनुपातों में श्रम और पूँजी के प्रयोग की अपेक्षा रखती हैं। इस प्रकार बिन्दु A पर उत्पादन की 50 इकाइयों का उत्पादन करने के लिए, पूँजी की OC और श्रम की OL इकाइयों का प्रयोग होता है। 100 इकाइयों के उत्पादन के लिए, पूँजी की OC_1 और श्रम की OL_1 इकाइयों की जरूरत है। उत्पादन की मात्रा दुगुनी करने के लिए पूँजी और श्रम की दुगुनी इकाइयों का प्रयोग किया जाता है। L के आकार का सममात्रा वक्र यह बतलाता है कि उत्पादन को बढ़ाने के लिए श्रम और पूँजी दोनों में आनुपातिक वृद्धि की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति में साधन पूरक होते हैं और बिल्कुल भी स्थानापन्न नहीं किए जा सकते। सममात्रा वक्रों के अनुलम्ब भाग पर पूँजी के लिए श्रम की स्थानापन्नता की दर शून्य है, क्योंकि सममात्रा-वक्रों का ढलान बिल्कुल नहीं हैं, जबकि क्षैतिज भाग में तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर अनन्त हैं।

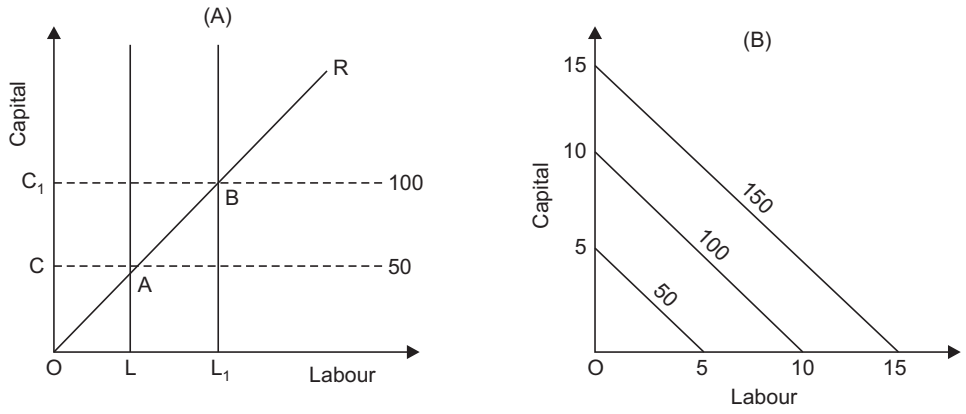

चित्र 2.13

2. **पूर्ण स्थानापन्न साधन –** चित्र में इसके विपरीत स्थिति दिखाई गई है, जहाँ पूँजी और पूर्ण स्थानापन्न हैं। सममात्रा-वक्र उत्पादन की क्रमशः 50, 100 और 150 इकाइयों को प्रकट करते हैं। उत्पादन की 50 इकाइयों का उत्पादन करने के लिए या तो पूँजी की 5 और श्रम की शून्य इकाई या फिर श्रम की 5 और पूँजी की शून्य इकाई का प्रयोग होता है। इसी प्रकार श्रम या पूँजी की 10 और 15 इकाइयाँ उत्पादन की क्रमशः 100 और 150 इकाइयों का उत्पादन कर सकती हैं। इस प्रकार सममात्रा-वक्रों के सब बिन्दुओं पर पूँजी के लिए श्रम की तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर स्थिर है, जो न तो शून्य और न अनन्त। यह वहुत है। अवास्तविक स्थिति है क्योंकि श्रम और पूँजी समान साधन नहीं हैं इसलिए वे पूर्ण स्थानापन्न नहीं है।

निष्कर्ष - हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है। कि दो साधनों में तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर न तो शून्य होती है ओर न अनन्त और न ही स्थिर बल्कि यह घटती जाती है क्योंकि सममात्रा-वक्र न L के आकार के होते हैं और न ही सरल रेखाएँ बल्कि वे, मूल बिन्दु के उन्नतोदर होते हैं।

साधन स्थानापन्ता की लोच (Elasticity of Substitution)

साधन स्थानापन्नता या तकनीकी स्थानापन्नता की लोच दो साधनों के बीच स्थानापन्न योग्यता की कोटि को मापती है। इस सिद्धान्त के निर्माता जे. आर. हिक्स ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है: "यह उस स्थिति का माप है जिसमें अन्य साधनों के स्थान पर एक परिवर्तनशील साधन को स्थानापन्न किया जा सकता है।" यदि एक वस्तु की इकाई के लिए दो साधन निश्चित अनुपातों में (1 मशीन + 2 श्रमिक) चाहिए, तो उनकी स्थानापन्नता की लोच शून्य होती हैं यदि श्रम और पूँजी लगभग समरूप हों, जिससे एक दूसरे का पूर्ण स्थानापन्न हो, तो उन दोनों में स्थानापन्नता की लोच अनन्त होती हैं जब श्रम की मात्रा में वृद्धि से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता उसी अनुपात में बढ़ जाए जिस

नोट

अनुपात में कुल उत्पादन बढ़ता है, तो स्थानापन्नता की लोच इकाई कहलाती है। अत: स्थानापन्नता की लोच (σ) का मूल्य शून्य और अनन्त में कहीं भी हो सकता है। η का मूल्य जितना अधिक होगा उतनी ही दो साधनों के बीच स्थानापन्नता अधिक होगी।

पर **श्रीमती जॉन राबिन्सन** ने स्थानापन्नता की लोच की यह परिभाषा की है, "यह साधनों की मात्राओं के अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन को, उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकताओं के अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन से विभक्त करने पर प्राप्त होती है।" यदि श्रम (L) और पूँजी के दो साधन हों और उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकताओं अनुपात को r द्वारा व्यक्त किया जाए तो स्थानापन्नता की लोच है,

$$es = \frac{d(\text{C/L})}{\text{C/L}} \div \frac{dr}{r}$$

जहाँ d परिवर्तन का प्रकट करती है।

प्रोफेसर हिक्स अपने (Revised Version) में एक प्रकार से राबिन्सन की परिभाषा को स्वीकार करता है जब वह कहता है कि पूर्ण प्रतियोगिता और पैमाने के स्थिति प्रतिफल में "जहाँ केवल दो साधन हों, तो हम इस प्रकार एक वक्र खींच सकते हैं कि एक अक्ष पर साधनों के प्रयोग की मात्राओं के अनुपात को मापा जाए और साधनों के प्रति इकाई मूल्यों के अनुपात को दूसरे अक्ष पर। इस वक्र की लोच को हम स्थानापन्नता की लोच कहते हैं।"

क्योंकि दो साधनों की सीमान्त भौतिक उत्पादकता के अनुपात को तकनीकी सीमान्त उत्पादकता की दर (MRTS) कहते हैं, इसलिए स्थानापन्नता की लोच के सिद्धान्त की सममात्रा-वक्र विश्लेषण की भाषा में इस प्रकार परिभाषित की जा सकती है, "साधनों के अनुपात में आनुपातिक परिवर्तन को तकनीक स्थानापन्नता की सीमान्त दर में आनुपातिक परिवर्तन से विभक्त करना।"

गणितीय विधि से, दो साधनों श्रम और पूँजी में स्थानापन्नता की लोच है,

$$es_{\text{LC}} = \frac{\text{Percentage in capita/labour ratio}}{\text{Percentage change in MRTS}_{\text{LC}}}$$

$$es_{\text{LC}} = \frac{d(\text{C/L})/(\text{C/L})}{d(\text{MRTS}_{\text{LC}})/\text{MRTS}_{\text{LC}}}$$

$$es_{\text{LC}} = \frac{d(\text{C/L})}{(\text{MRTS}_{\text{LC}})} \times \frac{\text{MRTS}_{\text{LC}}}{\text{C/L}}$$

यह परिभाषा प्रकट करती है कि तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर में साधनों के अनुपात से उलट परिवर्तन होता है। यदि हम तकनीकी स्थानापन्नता की सीमान्त दर को Y-अक्ष पर अंकित करें आदि पूँजी-श्रम अनुपात को X-अक्ष पर, तो परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाला वक्र TS स्थानापन्नता वक्र है जो चित्र में स्थानापन्नता की लोच को मापता है। बिन्दु M पर OM किरण की ढलान C/L है। इसी प्रकार, R बिन्दु M पर स्पर्श रेखा t_1 की ढलान MRTS_{LC} और बिन्दु R पर स्पर्श रेखा t_2 की ढलान भी MRTS_{LC} अत: इन दोनों स्पर्श रेखाओं की ढलानों के बीच का अन्तर $d(\text{MRTS}_{\text{LC}})$ है।

इस प्रकार, जिस क्षेत्र में स्थानापन्नता वक्र TS चपटा है, उसमें स्थानापन्नता की लोच बहुत अधिक होती है जैसे कि L और P के बीच में इस स्थिति में, पूँजी और श्रम अच्छे स्थानापन्न हैं। जहाँ स्थानापन्नता वक्र प्रणाली हो, स्थानापन्नता की लोच कम होती है जैसे TS वक्र R और L के बीच। यहाँ श्रम और पूँजी अच्छे स्थानापन्न नहीं है। M बिन्दु पर जहाँ स्थानापन्नता वक्र अनुलम्ब है, स्थानापन्नता की लोच शून्य बन जाती है। क्योंकि MRTS_{LC} में एक निश्चित प्रतिशत परिवर्तन नहीं होता। s स्थनापन्नता की अनन्त लोच का बिन्दु है, जहाँ MRTS_{LC} में एक निश्चित प्रतिशत परिवर्तन से पूँजी-श्रम अनुपात में बहुत ही अधिक परिवर्तन हो जाता है। बिन्दु L के गिर्द स्थानापन्नता की लोच इकाई है क्योंकि MRTS में एक निश्चित प्रतिशत परिवर्तन से पूँजी-श्रम अनुपात में बराबर का परिवर्तन होता है। (Fig. 2.14 देखें)

नोट

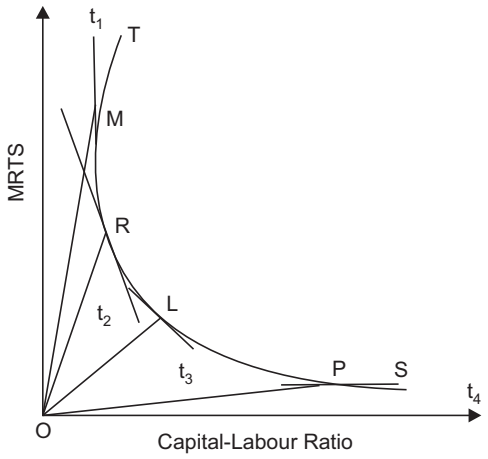

चित्र 2.14

स्थानापन्नता की लोच के इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि जब स्थानापन्नता की लोच इकाई हो, तो उत्पादन स्थिर प्रतिफल के नियम का पालन करता है, इकाई से अधिक लोच, बढ़ते प्रतिफल और इकाई से कम लोच, घटते प्रतिफल के सम्बन्ध को प्रकट करती है।

2.7 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (The Law of Variable Proportions)

सममात्रा वक्र विश्लेषण की सहायता से हम परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के व्यवहार या उस अल्पकालीन उत्पादन-फलन की व्याख्या कर सकते हैं जबकि एक साधन स्थिर हो, और दूसरा परिवर्तनशील।

मान लीजिए कि पूँजी स्थिर साधन है और श्रम परिवर्तनशील साधन है। चित्र में OA और OB कूट रेखाएँ हैं तथा उनके बीच पूँजी एवं श्रम की आर्थिक दृष्टिकोण से संभव इकाइयाँ, उत्पादन की 100, 200, 300, 400 एवं 500 इकाइयाँ उत्पादित करने के लिए लगाई जा सकती हैं। इसका अभिप्राय है कि सममात्रा वक्रों के इन भागों में पूँजी एवं श्रम की उत्पादकता धनात्मक है। दूसरी ओर, जहाँ, कूट रेखाएँ सममात्रा वक्रों को काटती हैं, साधनों का सीमान्त उत्पादकता शून्य है। उदाहरणार्थ, H बिन्दु पर पूँजी का सीमान्त उत्पादकता शून्य है तथा बिन्दु L पर श्रम का सीमान्त उत्पादकता शून्य है। जिस सममात्रा वक्र का भाग कूट रेखा से बाहर होगा, उस साधन का सीमांत उत्पादकता ऋणात्मक होगा। उदाहरण के तौर पर, पूँजी की सीमांत उत्पादकता G बिन्दु पर तथा श्रम का सीमांत उत्पाद R बिन्दु पर ऋणात्मक है।

परिवर्तनशील अनुपातों का नियम यह बताता है कि उत्पादन की तकनीक दी होने पर, एक परिवर्तनशील साधन जैसे श्रम की अधिक-से-अधिक इकाइयाँ एक स्थिर साधन, जेसे पूँजी, पर लगाने से उत्पादन में अनुपात से अधिक वृद्धियाँ होगी, जब तक कि एक विशेष बिन्दु नहीं आ जाते है और उसके बाद उत्पादन में अनुपात से कम वृद्धियाँ होगी। क्योंकि यह नियम उत्पादन में वृद्धियों के बारे में बताता है, इसलिए यह सीमांत उत्पाद से संबंधित हैं इस नियम को समझाने के लिए पूँजी को स्थिर साधन तथा श्रम को परिवर्तनशील साधन मान लिया गया है। चित्र 2.15 में सममात्रा वक्र उत्पादन के विभिन्न स्तरों को दर्शाते हैं। OC पूँजी की स्थिर मात्रा है जो एक समानान्तर रेखा CD द्वारा दिखाई गई है। जब हम इस रेखा पर दाईं ओर C से D की ओर चलते हैं तो इस पर विभिन्न बिन्दु पूँजी की स्थिर मात्रा OC के साथ लगातार बढती हुई श्रम की मात्राओं के संयोगों के प्रभाव के प्रभाव को दिखाते हैं।

प्रारंभ में जब हम C से G और H पर पहुँचते हैं, तो यह परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की प्रथम स्टेज, बढते सीमान्त प्रतिफल को दिखाती है। जब OC पूँजी के साथ CG श्रम लगाया जाता है तो उत्पादन 100 होता है। उत्पादन की 200 इकाइयाँ उत्पादन करने लिए, श्रम की मात्रा GH बढा दी जाती है जबकि पूँजी की मात्रा OC स्थिर ही रहती है। उत्पादन तो दुगुना हो जाता है परन्तु श्रम की मात्रा उत्पादन अनुपात में नहीं बढाई गई है, GH > CG इसका मतलब है कि श्रम शक्ति में छोटी-छोटी वृद्धियों से उत्पादन में समान वृद्धियाँ हुई हैं। अतः C

नोट

से H परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की प्रथम स्टेज है जिसमें सीमान्त उत्पाद बढ़ता है क्योंकि जब अधिक उत्पादन किया जाता हैं तो श्रम का प्रति इकाई उत्पादन बढ़ता है। (Fig. 2.15 देखें)

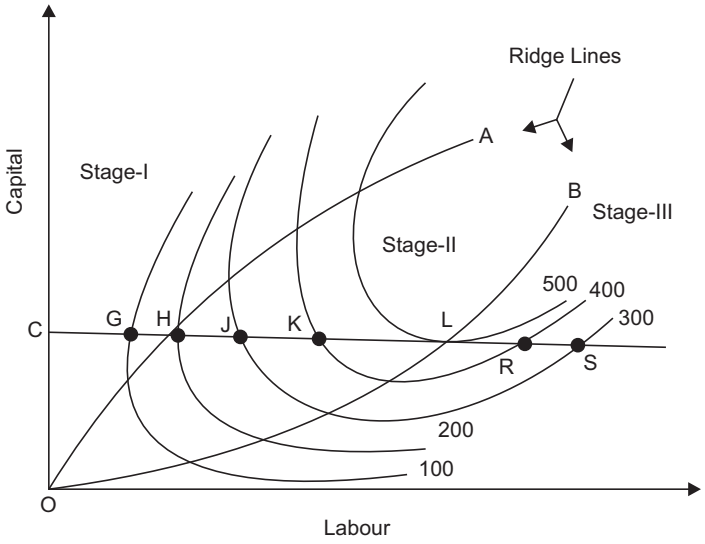

चित्र 2.15

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की दूसरी अवस्था सममात्रा-वक्रों का वह भाग है जो दो कूट-रेखाओं OA और OB के बीच स्थित है। जब श्रम कि अधिक मात्रा लगाई जाती है तो लगाई गई श्रम की मात्रा की वृद्धि के अनुपात से कुल उत्पादन में कम वृद्धि होती है। यह H और L बिन्दुओं के बीच घटते सीमान्त प्रतिफलों की स्टेज है। उत्पादन को 200 से 300 इकाइयों पर लाने के लिए श्रम की HJ मात्रा लगाई जाती है। फिर, उत्पादन को 300 से 400 बढ़ाने के लिए श्रम की JK मात्रा तथा 400 से 500 बढाने के लिए श्रम की और अधिक मात्रा KL अपेक्षित है। अत: उत्पादन की 100 इकाइयाँ बढाने के लिए हर बार परिवर्तनशील साधन की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयाँ स्थिर साधन के लिए लगानी पड़ती हैं, KL > JK > HJ. जिसका अभिप्राय है कि H और K के बीच श्रम का सीमान्त उत्पाद क्रमश: कम होता जाता है जब इसकी अधिक इकाइयाँ लगाई जाती हैं। यह परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की दूसरी अवस्था है जिसे घटते प्रतिफल की अवस्था कहते हैं।

यदि श्रम की मात्रा और बढा दी जाए, तो हम नीची कूट-रेखा के OB बाहर आ जाते हैं और परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीसरी अवस्था में प्रवेश करते हैं। इस क्षेत्र में, जो कूट रेखा OB से नीचे स्थित है। इस प्रकार श्रम से बहुत अधिक काम लिया जा रहा है ओर उसकी उत्पादकता ऋणात्मक हो गई। इस प्रकार श्रम से बहुत अधिक काम किया जा रहा है और उसका सीमांत उत्पाद ऋणात्मक हो गया है। दूसरे शब्दों में, जब श्रम की मात्रा LR और RS बढ़ाई जाती है तो उत्पादन बढ़ने के अपेक्षा 500 से 400 से 300 इकाइयाँ कम हो जाता है। यह ऋणात्मक सीमान्त प्रतिफल की स्टेज है।

हम उसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की दूसरी अवस्था में उत्पादन करना ही फर्म के लिए लाभदायक है क्योंकि कूटरेखा के बाएँ और दाएँ के भागों में जो नियम की क्रमश: पहली और तीसरी अवस्था बनाते हैं, उत्पादन करना हानिकर होगा।

पैमाने के प्रतिफल के नियम (The laws of Returns of Scale)

पैमाने के प्रतिफल के नियमों की भी सममात्रा वक्रों की धारणा से व्याख्या की जाते सकती है। पैमाने के प्रतिफल के नियमों से अभिप्राय साधनों के पैमाने में परिवर्तन के उत्पादन पर प्रभावों से है जब साधनों के संयोग किसी अनुपात में परिवर्तित किए जाते हैं। यदि दो साधनों, श्रम और पूँजी, को समान अनुपात में बढ़ा देने से उत्पादन बिलकुल

उसी अनुपात में बढ़ता है, तो पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते हैं। यदि उत्पादन में समान वृद्धियाँ प्राप्त करने के लिए दोनों साधनों को बड़ी आनुपातिक इकाइयों में बढ़ा दिया जाता है, तो पैमाने के घटते प्रतिफल होते हैं।

नोट

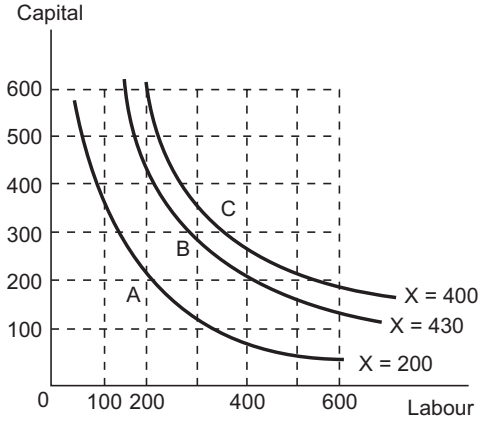

चित्र 2.16

यदि उत्पादन में समान वृद्धियाँ प्राप्त करने के लिए, दोनों साधनों को थोड़ी आनुपातिक इकाइयों में बढ़ा दिया जाता है, तो पैमाने के बढ़ते प्रतिफल होते हैं। (Fig. 2.16 देखें)

पैमाने के प्रतिफलों के चित्र में एक प्रसार पथ पर 'उत्पादन-के-बहु-स्तर' क्रमिक सममात्रा वक्रों के बीच अन्तर द्वारा दिखाया जा सकता है, अर्थात्, सममात्रा वक्र जो उत्पादन के ऐसे स्तर दर्शाते हों जो उत्पादन के किसी आधार स्तर के गुणज हैं, जैसे 100, 200, 300 आदि।

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल

चित्र (Fig. 2.16 देखें) पैमाने के बढ़ते प्रतिफलों को दर्शाता है जहाँ उत्पादन की समान वृद्धियाँ प्राप्त करने के लिए, दोनों साधनों, श्रम और पूँजी, की उत्तरोत्तर कम आनुपातिक वृद्धियाँ चाहिए। जैसे चित्र में दिखाया गया है।

उत्पादन में 100 इकाइयों के लिए चाहिए $3C + 3L$

उत्पादन में 200 इकाइयों के लिए चाहिए $5C + 5L$

उत्पादन में 300 इकाइयों के लिए चाहिए $6C + 6L$

जिससे प्रसार पथ OR पर $OA > AB > BC$ इस स्थिति में, उत्पादन फलन एक से अधिक कोटि का समरूप है।

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल मशीनों, प्रबंधकर्ता, श्रम, वित्त आदि में अविभाज्यताओं के कारण पाए जाते हैं। कुछ उपकरणों या क्रियाओं के न्यूनतम आकार होते हैं। और उन्हें छोटे आकारों में विभाजित नहीं किया जा सकता है जब कोई व्यावसायिक इकाई फैलती है, तो पैमाने के प्रतिफल बढ़ते हैं क्योंकि अविभाज्य साधनों को उनकी पूरी क्षमता तक लगाया जाता है।

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल विशेषीकरण और श्रम विभाजन का भी परिणाम होते हैं। जब फर्म का पैमाना फैलता है तो विशेषीकरण और श्रम विभाजन का क्षेत्र विस्तृत होता है जिससे दक्षता बढ़ती है और पैमाने के प्रतिफलों में वृद्धि होती है। आगे, जब फर्म फैलती है तो उसे उत्पादन की आन्तरिक किफायतें प्राप्त होती है। जिससे वह बेहतर मशीनें लगा सकती है, अधिक आसानी से वस्तुओं को बेच सकती है, सस्ती दर पर मुद्रा उधार ले सकती है, अधिक कुशल प्रवंधको और श्रमिकों की सेवाएँ प्राप्त कर सकती है। ये सभी किफायतें पैमाने के प्रतिफलों को अनुपात से अधिक बढ़ाने में सहायक होती है।

केवल इतना ही नहीं, बाहरी किफायतो के कारण भी फर्म पैमाने के बढ़ते प्रतिफलों के लाभ उठाती है। जब अपना दीर्घकालीन माँग को पूरा करने के लिए उद्योग अपना विस्तार करता है तो बाहरी किफायतें उत्पन होती हैं, जिनके

उद्योग की सभी फर्मों को लाभ होते हैं। जैसे बहुत सी फर्मों के एक स्थान पर केन्द्रित होने से कुशल श्रम, उधार और यातायात की सुविधाओं का आसानी से मिलना। सहायक उद्योगों की स्थापना, व्यापार पत्रिकाओं, शोध और अनुसंधान केन्द्रों का खुलना आदि जो फर्मों की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इस प्रकार की बाहरी किफायतों से पैमाने के प्रतिफल बढ़ते हैं।

पैमाने के घटते प्रतिफल

चित्र घटते प्रतिफलों को दर्शाता है, जहाँ उत्पादन में समान वृद्धियाँ प्राप्त करने के लिए, उत्तरोत्तर श्रम और पूँजी दोनों की आनुपातिकता से अधिक वृद्धियाँ चाहिए। जैसे चित्र में

उत्पादन की 100 इकाइयों के लिए चाहिए $2C + 2L$

उत्पादन की 200 इकाइयों के लिए चाहिए $5C + 5L$

उत्पादन की 300 इकाइयों के लिए चाहिए $9C + 9L$

जिससे प्रसार पथ OR पर $OG < GH < HK$.

इस स्थिति में, उत्पादन फलन एक से कम कोटि का समरूप है पैमाने के घटते प्रतिफल निम्नलिखित कारणों से प्रारंभ हो सकते हैं। अविभाज्य साधन अकुशल और कम उत्पादक हो सकते हैं। व्यापार भारी-भरकम हो सकता हैं। जिससे ताल-मेल और देख-भाल की समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं। प्रबन्ध का विस्तार होने से नियंत्रण और कठोरताओं की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन आन्तरिक अमितव्ययिताओं के साथ पैमाने की बाहरी अमितव्ययिताएँ मिल जाती हैं। ये ऊँची साधन कीमतों या साधनों की घटती उत्पादकता से उत्पन्न होती हैं। जब उद्योग का विस्तार जारी रहता है, तो प्रशिक्षित श्रम, भूमि, पूँजी आदि की माँग बढ़ जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता के कारण मजदूरी लगान और ब्याज की दरें बढ़ जाती हैं। कच्चे माल की कीमतें भी बढ़ जाती हैं। यातायात और मार्किटिंग की समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इन सब कारणों से लागतें बढ़ने लगती हैं और फर्मों के विस्तार से पैमाने का प्रतिफल घटने लगता है।

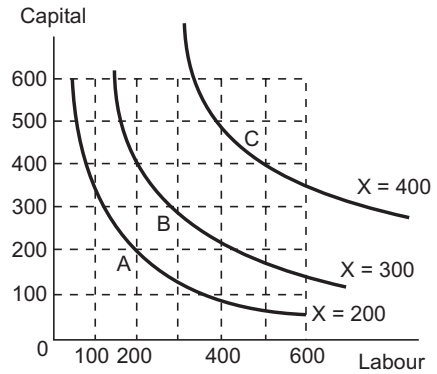

चित्र 2.17

पैमाने के स्थिर प्रतिफल

चित्र पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाता है, कि सममात्रा वक्रों 100 , 200 और 300 के बीच अन्तर प्रसार पथ पर समान है, अर्थात् अभिप्राय है कि यदि श्रम और पूँजी दोनों साधनों की इकाइयों को दुगुना कर दिया जाता है तो उत्पादन भी दुगुना हो जाता है। उत्पादन को तिगुना करने के लिए दोनों साधनों की इकाइयों को तिगुना कर दिया जाता है। जैसे चित्र में

उत्पादन की 100 इकायों के लिए चाहिए। $(2C + 2L) = 2C + 2L$

उत्पादन की 200 इकायों के लिए चाहिए। $2(2C + 2L) = 4C + 4L$

उत्पादन की 100 इकायों के लिए चाहिए। $3(2C + 2L) = 6C + 6L$

नोट

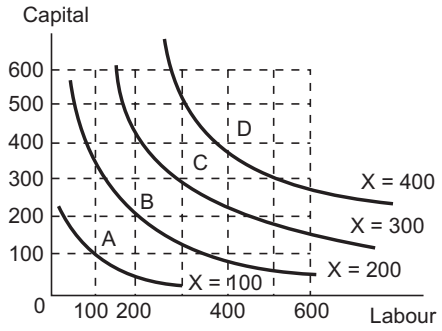

चित्र 2.18

पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते हैं जब एक फर्म द्वारा प्राप्त आंतरिक किफायतें और आंतरिक आनियमितताएँ निष्प्रभावित हो जाती है, जिससे उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है। दूसरा कारण बाहरी किफायतों और बाहरी अमितव्ययिताओं का बराबर होना है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल इस कारण भी होते हैं जब उत्पादन के साधन विभाज्य, स्थानापन्न और समरूप हों तथा दी हुई कीमतों पर उनकी आपूर्तियाँ पूर्ण लोचदार होती है। इसलिए पैमाने के स्थिर प्रतिफलों के लिए उत्पादन फलन समरूप एक कोटि का होता है।

हमने ऊपर पैमाने के तीनों नियमों की अलग-अलग व्याख्या इस मान्यता पर की है कि फर्म की तीन प्रकिया उत्पादन के समस्त रेंजों पर एक ही प्रतिफल दर्शाती है, जैसे कि चित्र केवल बढ़ते प्रतिफल, चित्र केवल घटते प्रतिफल और चित्र केवल स्थिर प्रतिफल। फिर भी, उत्पादन की तकनीकी स्थितियां ऐसी हो सकती हैं कि पैमाने के प्रतिफल उत्पादन की विभिन्न रेंजों पर बदल सकते हैं। कुछ रेंज पर, हमें पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त हो सकते हैं, जबकि दूसरी रेंज पर हमें पैमाने के बढ़ते या घटते प्रतिफल प्राप्त हो सकते हैं।

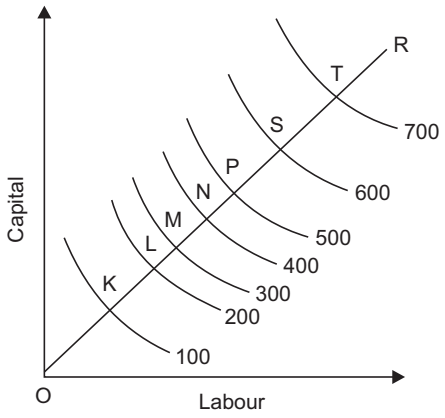

चित्र 2.19

इसे समझाने के लिए हम मूल बिन्दु से एक विस्तार पथ OR खींचते हैं। उत्पादन की समान वृद्धियों अर्थात् 100, 200, 300 इत्यादि को प्रकट करने वाले क्रमिक सममात्रा विस्तार पथ को टुकडों में बांट देते हैं। जैसे-जैसे हम विस्तार पथ के साथ-साथ चलते हैं, क्रमिक सममात्रा वक्रों में अन्तर घटता जाता है। यह पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की स्थिति है। चित्र में यह अवस्था K से M तक दिखाई गई है जहाँ KL और LM में अन्तर क्रमिक रूप से घटता जाता है; $LM < KL$ इस प्रकार फर्म को उत्पादन की समान वृद्धियों का उत्पादन करने के लिए श्रम और पूँजी की कम मात्रा में वृद्धि की जरूरत पड़ती है (Fig. 2.19 देखें)

यदि सममात्रा-वक्रों के दो खण्डों का अन्तर समान को तो पैमाने का प्रतिफल स्थिर होता है। यदि श्रम और पूँजी की मात्रा दुगुनी कर दी जाए तो उत्पादन भी दुगुना हो जाएगा। इस प्रकार जब उत्पादन 300 से बढकर 400 और

नोट

500 इकाइयों पर आता है, तो उत्पादन के स्तरों को प्रकट करने वाले सममात्रा वक्र बिन्दु P तक विस्तार पथ पर समान खण्ड काटते हैं अर्थात् MN = NP.

यदि पैमाने का प्रतिफल घटता हुआ हो, तो विस्तार पथ पर दो सममात्रा-वक्रों के बीच की दूरी बड़ी हो जाएगी। ST > PS इसका अभिप्राय है कि उत्पादन में समान वृद्धियों लिए श्रम और पूँजी की मात्रा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि चाहिए। इस प्रकार, एक ही प्रसार पथ पर K से M तक पैमाने के बढ़ते प्रतिफल हैं, M से P तक पैमाने के स्थिर प्रतिफल हैं और P से T तक पैमाने के घटते प्रतिफल हैं।

पैमाने के प्रतिफल और साधन के प्रतिफल में संबंध (Relation between Returns to Scale and Returns to a Factor)

एक साधन के प्रतिफल का संबंध अल्पकालीन उत्पादन संतुलन से है जब अधिक उत्पादन करने के लिए एक साधन को परिवर्तित और दूसरे साधन को स्थिर रखा जाता है, तो परिवर्तनशील साधन के सीमांत प्रतिफल या सीमांत भौतिक उत्पादकता कम होते हैं। दूसरी ओर, पैमाने के प्रतिफल का संबंध दीर्घकालीन उत्पादन फलन से होता है, जब एक फर्म अपने एक या अधिक साधनों को परिवर्तित करके अपने उत्पादन के पैमाने को बदलती है। पैमाने के प्रतिफल स्थिर होते है। जब उत्पादन उसी अनुपात में बढ़ता है जिस अनुपात में साधनों की इकाईयाँ बढ़ती हैं। पैमाने के प्रतिफल बढ़ते हैं जब उत्पादन में वृद्धि अनुपात में साधनों की इकाइयों में वृद्धि से अधिक होती है। पैमाने के पतिफल घटते हैं यदि उत्पादन में वृद्धि अनुपात में साधनों की इकाइयों में वृद्धि से कम होती है।

हम एक साधन के प्रतिफल और पैमाने के प्रतिफल में संबंध की विवेचना निम्नलिखित मान्यताओं के आधार पर करते हैं:

1. उत्पादन के केवल दो साधन, श्रम और पूँजी हैं।
2. श्रम परिवर्तनशील साधन है और पूँजी स्थिर साधन है?
3. उत्पादन फलन समरूप हैं।

ये मान्यताएँ दी होने पर, हम पहले पैमाने के स्थिर प्रतिफल और एक परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल को चित्र (Fig. 2.20 देखें) द्वारा समझाते हैं जहाँ OS प्रसार पथ हैं जो पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाता हैं, क्योंकि प्रसार पथ पर दो सममात्रा वक्रों 100 और 200 के बीच अन्तर बराबर हैं, अर्थात् OM = MN. उत्पादन की 100 इकाइयाँ उत्पादित करने के लिए OC + OL पूँजी और श्रम की मात्राएँ लगाने से फर्म M बिन्दु पर पहुँचती है। उत्पादन की दुगुनी (200) इकाइयों के लिए श्रम और पूँजी की दुगुनी मात्राएँ $OC_2 + OL_2$ लगाने से फर्म N बिन्दु पर पहुँचती है। इस प्रकार, पैमाने के प्रतिफल स्थिर हैं क्योंकि OM = MN.

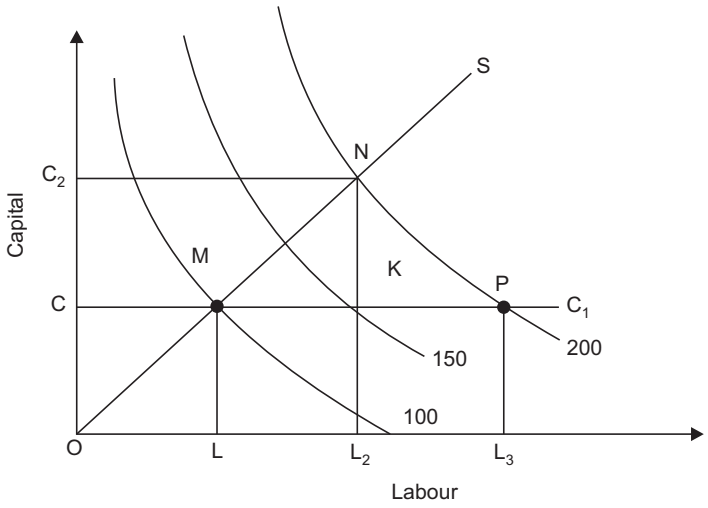

चित्र 2.20

नोट

यह सिद्ध करने के लिए कि परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल कम होते हैं। हम पूँजी की OC मात्रा को स्थिर साधन लेते हैं जिसे CC_1 रेखा द्वारा दिखाया गया है। C को स्थिर रखते हुए यदि श्रम की मात्रा को LL_2 द्वारा दुगुना कर दिया जाता है, तो हम K बिन्दु पर पहुँचाते हैं जो सममात्रा वक्र 200 की अपेक्षा एक नीचे सममात्रा वक्र 150 पर स्थित है। C को स्थिर रखते हुए, यदि उत्पादन का 100 से 200 इकाइयाँ करके दुगुना करना हो, तो श्रम की L_3 इकाइयों की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु $L_3 > L_2$, इस प्रकार, C को स्थिर रखकर श्रम की इकाइयाँ दुगुनी करने से, उत्पादन दुगने से कम होता है। यह P बिन्दु पर 200 इकाइयों की बजाए K बिन्दु पर 150 इकाइयाँ है यह दर्शाता है कि परिवर्तनशील साधन, श्रम के सीमांत प्रतिफल कम हुए हैं। जैसा कि स्टोनियर और हेग ने व्यक्त किया है, "इसलिए यदि उत्पादन फलन सदैव प्रथम कोटि का समरूप हो तो और यदि पैमाने के प्रतिफल सदैव स्थिर हों तो सीमांत भौतिक उत्पादकता (प्रतिफल) सदैव कम होंगे।"

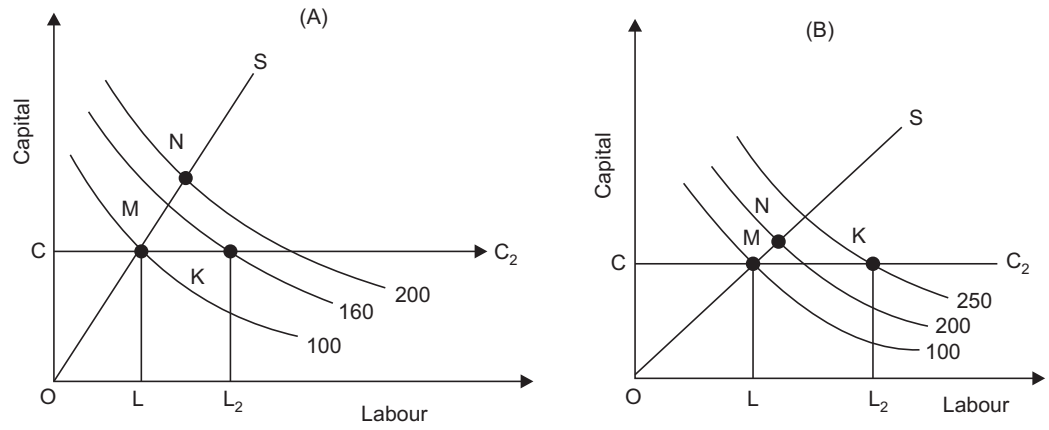

चित्र 2.21

पैमाने के घटते प्रतिफल और परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल में संबंध को चित्र (Fig. 2.21 देखें) द्वारा समझाया गया है, जहाँ प्रसार पथ OS पैमाने के घटते प्रतिफल दर्शाता है क्योंकि इसका खंड MN > OM. इसका अभिप्राय है कि उत्पादन को दुगुना 100 से 200 करने के लिए दोनों साधनों की दुगुने से अधिक मात्राएँ स्तर सममात्रा वक्र 175 के बिन्दु R पर जाएगें जो सममात्रा-वक्र 200 से नीचे है। यह पैमाने के घटते प्रतिफल को दर्शाता है। यदि C को स्थिर रखा जाए और परिवर्तनशील साधन, श्रम, की मात्रा की LL_2 द्वारा दुगुना कर दिया जाए, तो हम उस बिन्दु पर पहुँचते है जहाँ परिवर्तनशील साधन, श्रम के सीमांत प्रतिफल (या सीमांत भौतिक उत्पादकता) कम होते हैं।

अब हम पैमाने के बढ़ते प्रतिफल और परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल के बीच संबंध लेते हैं। इस चित्र में दर्शाया गया है। पेनल में प्रसार पथ OS पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को व्यक्त करता है, क्योंकि भाग OM > MN. इसका मतलब है कि उत्पादन को 100 से 200 करने के लिए, दोनों साधनों की दुगुना से कम मात्राएँ चाहिए। यदि C को स्थिर रखा जाता है और परिवर्तनशील साधन, श्रम की मात्रा को LL_2 द्वारा दुगुना कर दिया जाता है, तो उतपादन का K स्तर सममात्रा 200 से नीचे सममात्रा वक्र 160 पर पहुँचता है जो घटते सीमांत प्रतिफल को व्यक्त करता है।

यदि पैमाने के प्रतिफल तेजी से बढ़ते हैं, अर्थात् वे बहुत धनात्मक हैं, तो वे परिवर्तनशील साधन, श्रम, के घटते प्रतिफलों को निष्क्रिय कर देंगे। ऐसी स्थिति बढ़ते सीमांत प्रतिफल लाती है। इसकी पेनल द्वारा व्याख्या की गई है जहाँ प्रसार पथ OS पर भाग OM > MN पैमाने के बढ़ते प्रतिफल दर्शाता है। जब परिवर्तनशील साधन, श्रम, को LL_2 मात्रा द्वारा दुगुना किया जाता है, C को स्थिर रखकर, तो हम सममात्रा वक्र 250 के बिन्दु K पर पहुँचते हैं जो सममात्रा वक्र 200 से ऊपर स्थित है। यह सिद्ध करता है कि परिवर्तनशील साधन, श्रम के सीमांत प्रतिफलों में वृद्धि हुई है जबकि पैमाने के प्रतिफल बढ़ रहे हैं।

निष्कर्ष – ऊपर के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक समरूप फलन के अन्तर्गत जब एक स्थिर साधन का परिवर्तनशील साधन के साथ संयोग किया जाए, तो परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल घटते हैं जब पैमाने के प्रतिफल स्थिर, घटते और बढ़ते रहते हैं। फिर भी, यदि पैमाने के तेजी से बढ़ते प्रतिफल हों, तो परिवर्तनशील साधन के सीमांत प्रतिफल घटने की बजाए बढ़ते हैं।

नोट

2.8 लागतों की प्रकृति तथा लोच (The Nature of Costs and Cost Elasticity)

फर्म की लागत उसकी पूर्ति को निर्धारित करती है पूर्ति और माँग द्वारा कीमत निर्धारित होती है। कीमत निर्धारण की प्रक्रिया और पूर्ति शक्तियों को समझने के लिए हमें लागत की प्रकृति को समझना होगा। इस भाग में हम लागतों की कुछ हमत्त्वपूर्ण धारणाओं, लागतों के परम्परागत और आधुनिक सिद्धांत और लागतों की लोच का अध्ययन करेंगे।

लेखांकन और आर्थिक लागतें (Accounting and Economic Costs)

किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मुद्रा व्यय को मुद्रा लागतें कहते हैं। इसमें श्रम की मजूदरी और वेतन; कच्चे माल कम लागत; मशीनों और उपकरणों का खर्च; मशीनों के मूल्यह्रास और घिसने और ब्याज; बिल्डिंग तथा अन्य पूँजी-पदार्थ और बिल्डिंग का किराया; उधार ली हुई पूँजी का ब्याज; बिजली, ईंधन, यातांयात और विज्ञापन; तथा बीमें का खर्च और सब प्रकार के कर शामिल हैं। ये लेखांकन लागतें हैं जो एक उद्यमी उत्पादन के विभिन्न साधनों को भुगतान करने के लिए ध्यान में रखता हैं। ये मुद्रा लागतें सुनिश्चित लागतें (explicit costs) कहलाती हैं जो एक लेखाकार फर्म की लेखा पुस्तकों में दर्ज करता है। लेकिन एक अन्य प्रकार की भी आर्थिक लागतें होती हैं जिन्हें अंतर्निहित लागतें (imputed costs) कहते हैं। उद्योग के अपने स्रोतों और सेवाओं का आरोपित मूल्य (imputed value) अंतर्निहित लागत हैं। प्रबन्धकर्ता-मालिक का वेतन, जो वेतन न लेकर सामान्य लाभ से ही संतुष्ट है; यदि बिल्डिंग उद्योगपति की अपनी हो, तो उसका अनुमानित किराया; और मार्किट की ब्याज दर पर उद्योगपति की अपनी लगाई हुई पूँजी का ब्याज, लागत में आते हैं। अत: किराया; और मार्किट की ब्याज दर पर उद्योगपति की अपनी लगाई हुई पूँजी का ब्याज, लागत में आते हैं। अत; आर्थिक लागतों में लेखांकन लागतें जमा अंतर्निहित लागतें शमिल होती हैं, अर्थात् सुनिश्चित तथा अंतर्निहित दोनों प्रकार की लागतें।

उत्पादन लागतें (Production costs)

उत्पादन की इन कुल लागतों को दो भागों में बाँटा जाता है; परिवर्तनशील लागतें और स्थिर लागतें। कुल परिवर्तनशील लागते (Total Variables Costs) – वे खर्च होते हैं जो फर्मों का उत्पादन में परिवर्तन होने पर परिवर्तित हो जाते हैं। अधिक उत्पादन के लिए श्रम, कच्चे माल, शक्ति, ईंधन आदि उपकरणों की अधिक मात्रा की जरूरत होती है, जिनसे उत्पादन का खर्च बढ़ जाता है। जब उत्पादन कम हो जाता है, तो परिवर्तनशील लागतें भी घट जाती हैं और उत्पादन के बिन्कुल बन्द हो जाने पर वह समाप्त हो जाती है। मार्शल ने परिवर्तनशील लागतों को उत्पादन की प्रमुख लागतें (Prime costs) कहा है।

कुल स्थिर लागतें **(Total Fixed Costs) –** जिन्हें मार्शल पूरक लागतें (supplementary costs) कहता है, उत्पादन के वे खर्च होते हैं, जो उत्पादन में परिवर्तन होते पर परिवर्तित नहीं होते। किराए और ब्याज का भुगतान, अवमूल्यन खर्च, स्थायी स्टॉफ की मजदूरी और वेतन स्थायी लागतें हैं, जो अस्थायी रूप से उत्पादन बन्द हो जाने पर भी फर्म को खर्च करनी पड़ती हैं। क्योंकि ये लागतें उत्पादन के सामान्य खर्चों के अतिरिक्त होती हैं, इसलिए इन्हें व्यापार की भाषा में उपरि लागतें (overhead costs) कहते हैं।

लागतों के संबंध को चित्र में दिखाया गया है जहाँ समानांतर वक्र FC और X-अक्ष के बीच का अंतर कुछ स्थिर लागतों को मापता है और कुछ परिवर्तनशील लागतें FC वक्र के उपर का भाग है, अर्थात् TC और TFC के बीच का अंतर है। इस प्रकार OQ_1 उत्पादन स्तर पर, TC = TFC + TVC बराबर है: $Q_1L = Q_1P + PL$ इसी प्रकार OQ_2 उत्पादन स्तर पर $Q_2M = Q_2S + SM$. (Fig. 2.22 देखें)

नोट

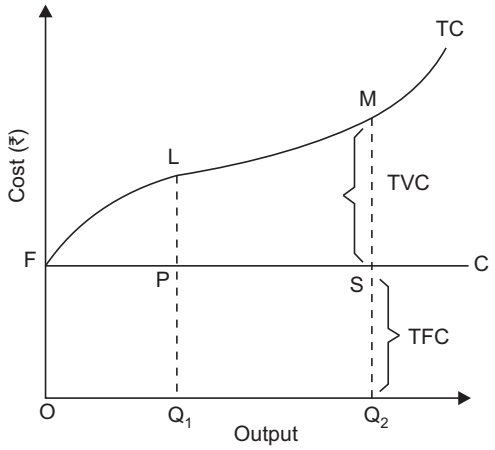

चित्र 2.22

महत्त्व (Importance)– स्थिर और परिवर्तनशील लागतों में यह केवल अल्पकाल में ही सही होता हैं। अल्पकालीन में कोई फर्म अपनी वस्तु को घाटे में बेच सकती है परन्तु वह तब तक उत्पादन करती रहेगी, जब तक कि वह परिवर्तनशील लागतों को पूरा कर लेती है। दीर्घकाल में समस्त लागतें परिवर्तनशील होती हैं क्योंकि फर्म अपनी लगी हुई मशीनें, उपकरण, श्रम की मात्रा आदि को परिवर्तित कर सकती है। इस प्रकार दीर्घकालीन में सब लागतें परिवर्तनशील बन जाती हैं और वर्तमान कीमत पर फर्म को इनहें पूरा करना पड़ेगा अन्यथा इसका

वास्तविक लागत (Real Costs)

उत्पादक के दृष्टिकोण से उत्पादन के खर्च मुद्रा-लागत हैं परन्तु वे इस बारे में कुछ नहीं बताते कि इन लागतों के पीछे क्या है। मार्शल का विचार था कि एक वस्तु के उत्पादन में समाज के विभिन्न सदस्यों द्वारा किया गया प्रयत्न और त्याग (efforts and sacrifices) उत्पादन की वास्तविक लागतें हैं। पूँजीपति द्वारा बचत करने और मुद्रा को लगाने, श्रमिक द्वारा अपने अवकाश को छोड़ने और भूमिपति द्वारा भूमि के प्रयोग के लिए किए गए प्रयत्न और त्याग कुल मिलाकर वास्तविक लागतें बनाते हैं।

परन्तु वास्तविक लागतें कभी उत्पादन के मुद्रा खर्चों के बराबर नहीं होती। मार्शल ने स्वयं यह लिखकर इस बात को स्वीकार किया था कि 'यदि मुद्रा की क्रय-शक्ति प्रयत्न की भाषा में लगभग, स्थिर रहती है और यदि प्रतीक्षा के लिए पारिश्रमिक की दर लगभग स्थिर रहती है, तो लागतों की मुद्रा माप वास्तविक लागतों के अनुरूप होती है परन्तु इस प्रकार की अनुरूपता को आसानी से नहीं मान लिया जा सकता। "जो काम अरुचिकर होता है, उसकी मजदूरी अधिक नहीं होती और जो काम हल्का होता है उसकी मजदूरी कम नहीं होती। पाँच रुपये बचाने वाले व्यक्यि के त्याग को पाँच रुपये मजदूरी पाने वाले श्रमिक के कष्टपूर्ण प्रयत्न के समान भी नहीं किया जा सकता। इस प्रकार अल्पकालीन या दीर्घकालीन में मुद्रा-लागतें और उत्पादन की वास्तविक लागतें एक-दूसरे के अनुरूप नहीं होती बल्कि यह हमें अवास्तविकता के जंजाल और भ्रमपूर्ण उपकल्पना में ले जाती है।

अवसर लागत (Opportunity Cost) वह लागत होती है जो एक के बजाए दूसरी वस्तु को लेने में अवसर छिन जाने या वैकल्पिक त्याग में अथवा एक के स्थान पर दूसरी साधन-सेवा का प्रयोग करने में आती हैं। क्योंकि स्रोत दुर्लभ हैं, इसलिए एक साथ सब वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। अत: यदि एक वस्तु के उत्पादन में उन्हें प्रयोग करना है, तो अन्य प्रयोगों से उनको हटा लेना होगा। इस प्रकार एक की लागत दूसरे की लागत का वैकल्पिक त्याग है। बैनहम के शब्दों में, 'किसी वस्तु की अवसर लागत वह दूसरा सबसे अच्छा विकल्प है जिसका उन्हीं साधनों से या उनके समान उतनी ही मुद्रा लागत के साधनों से समूह से उसकी उपेक्षा उत्पादन किया जा सकता था। 'गेहुँ के उगाने के लिए भूमि के प्रयोग की लागत उस वैकल्पिक फसल का मूल्य है जो उस पर लगाई जा सकती थी। श्रम की वास्तविक लागत वह है जो उसे किसी अन्य रोजगार में मिल सकती थी। पूँजीपति के लिए पूँजी का लागत वह ब्याज है जो उसे कहीं और मिल सकता था। प्रबन्धकर्ता की सामान्य कमाई वह है जो उद्योगपति को किसी संयुक्त स्टॉक कम्पनी के प्रबन्धक के रूप में मिल सकती थी। इस प्रकार वास्तविक लागत छिने हुए अवसर या वैकल्पिक त्याग की लागत है।

अवसर लागत में सुनिश्चित (explicit) और अंतर्निहित (implicit) दोनों प्रकार ही लागतें शमिल होती है। सुनिश्चित लागते वे सीधे खर्चों हैं जो एक फर्म को वस्तुएँ खरीदने के लिए किए जाते हैं। उसमें मजदूरी और वेतन, कच्चे माल, बिजली, ईंधन, विज्ञापन, परिवहन और कर के खर्च शामिल हैं। अंतर्निहित लागतें उद्यमी द्वारा अपने संसाधनों और सेवाओं का आरोपित (imputed) मूल्य है। दूसरे शब्दों में, स्वनियोजित (self employed) और निजी स्वामितव संसाधन अपने सबसे बढ़िया वैकल्पिक प्रयोग में जो कमा सकते थे, वे उनकी अंतर्निहित लागतें हैं, इस प्रकार अंतर्निहित मजदूरी, लगान और ब्याज का संबध सबसे ऊँची मजदूरी, लगान और ब्याज से है, जो एक उद्यमी अपने श्रम, बिल्डिंग और पूँजी का स्व्यं प्रयोग न करके दूसरों को उधार देकर अथवा उनकी सेवा में लगाकर प्राप्त कर सकता था। परन्तु इसका वह मतलब नहीं कि केवल अंतर्निहित लागतें ही अवसर लागत में शामिल होती हैं और सुनिश्चित लागतें इसमें शामिल नहीं होती। वास्तव में, किसी भी फर्म की अवसर लागत में सभी त्यागे गए विकल्प (alternatives forgone) चाहे वे सुनिश्चित अथवा अंतर्निहित हों, शामिल होते हैं।

अवसर लागत की धारणा को चित्र (Fig. 2.23 देखें) में उत्पादन संभावना वक्र PP_1 द्वारा व्याख्या की गई है। इस वक्र में संयोग A पर फर्म OL_1 श्रम और OK_1 पूँजी का प्रयोग करती है। यदि वह L_1L_2 अधिक गई है। इस वक्र में संयोग A पर फर्म OL_1 श्रम और OK_1 पूँजी का प्रयोग करती है। यदि वह L_1L_2 अधिक श्रम प्रयोग करना चाहती है तो उसे K_1K_2 पूँजी का त्याग करना पड़ेगा। इस प्रकार L_1L_2 श्रम की अवसर लागत K_1K_2 पूँजी की मात्रा है।

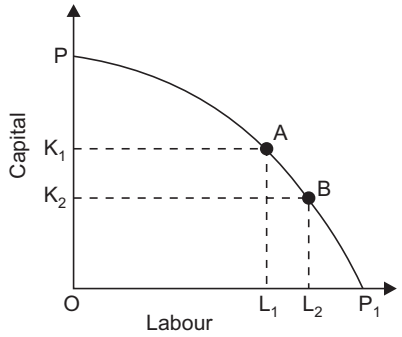

चित्र 2.23

इसका महत्त्व (Its importance) – अवसर लागत की धारणा का आर्थिक समस्याओं में बहुत व्यवहार होता है। साधन-कीमतों के निर्धारण में यह लागू होती है। उपयोग और सार्वजनिक व्यय में भी इसका व्यवहार किया जा सकता है। सिनेमा देखने की लागत वह पैन है जिसे खरीदने से विद्यार्थी को वंचित रहना पड़ता है। समाज के लिए, हथियारों की फैक्टरी की लागत नागरिकों के वे लाभ हैं जिनका त्याग करना पड़ता है। अन्तिम, अवसर लागत कीमत की तथ्य की व्याख्या करती है क्योंकि वस्तुएँ और साधन सेवाएँ दुर्लभ हैं, उनका वैकल्पिक नही होंगे जिनका त्याग किया जाए, इसलिए ना ही अवसर लागत और ना ही कीमत होगी।

इसकी सीमाएँ (Its Limitations) – फिच भी अवसर लागत की धारणा कुछ सीमाओं से मुक्त नहीं है। प्रथम, यह उन साधन सेवाओं पर लागू नहीं होती जो स्थिर हैं। किसी निश्चित या स्थिर साधन का कोई विकल्प नहीं होता, इसलिए इसकी अवसर लागत शून्य है। दूसरे, यदि साधनों की गति रोक दी जाए, या वे अन्य विकल्पात्कम व्यवसायों में जाने को तैयार न हों, तो उनकी कीमतों में अवसर लागत नहीं झलकती। तीसरे, एक व्यक्ति और समाज की लागतों में अन्तर हो सकता है। नगर के बीच में एक धुएँ वाली फैक्टरी का वैकल्पिक त्याग, स्वास्थ्य संकट के रूप में बहुत अधिक हो सकता है जिसका मुद्रा माप संभव नहीं। चौथे, त्यागे हंए विकल्प प्राय: स्पष्ट रूप से भी नहीं जाने जा सकते। यदि विकल्प आसानी से जाने जा सकें तब तो कोई समस्या ही नहीं। यदि साधन सघन हों क्योंकि आधुनिक जटिल उत्पादन व्यवस्था में, तो एक बार लगाए जाने के बाद उनका कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं हो सकता। टिकाऊ पूँजी उपकरणों की कोई अवसर लागत नहीं होती। परन्तु इसकी गति उस वस्तु की कीमत में प्रवेश नहीं करती

जिसका उत्पादन करने में यह सहायक है। अन्तिम, यह पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है जो वास्तव में नहीं पाई जाती है।

नोट

निजी और सामाजिक लागतें (Private and Social costs)

निजी और सामाजिक लागतों की धारणा का प्रयोग सर्वप्रथम पीगू (Pigou) ने अपनी पूस्तुक में किया था। निजी लागतें एक फर्म द्वारा एक वस्तु या सेवा के उत्पादन पर किया गया खर्च है। इनमें सुनिश्चित और अंतर्निहित दोनों प्रकार की लागतें शामिल होती है। फिर भी, एक फर्म की उत्पादन क्रियाएँ, दूसरों के लिए आर्थिक लाभ अभवा हानि ला सकती है। उदाहरणार्थ, स्टील, रबड़ और रसायन जैसी वस्तुओं का उत्पादन वातावरण को प्रदूषित करता है जिससे सामाजिक लागते होती हैं। दूसरी ओर, शिक्षा, सफाई, पार्क आदि की सेवाओं का निर्माण सामाजिक लाभ लाता है। उदाहरणार्थ, शिक्षा को ही लीजिए, जो न केवल प्राप्तकर्ताओं को ऊँची आय और अन्य संतुष्टियाँ प्रदान करती है बल्कि समाज को अधिक प्रबुद्ध (enlightened) शहरी भी प्रदान करती है। यदि हम उत्पादन को निजी लागतों और वातावरणीय प्रदूण जैसी दूसरों पर हानियों को इकट्ठा जोड़ दे तो हमें सामाजिक लागतें प्राप्त होंगी।

लागत फलन (The Cost Function)

लागत फलन कुल लागत और उस निर्धारण करने वाले तत्त्वों के बीच फलनात्मक संबन्ध को व्यक्त करता है। प्राय: वे तन्व जो एक फर्म के उत्पादन की कुल लागत (C) को निर्धारित करते हैं, वे हैं: उत्पादन (Q) प्रौद्योगिकी का स्तर (T), साधनों की कीमतें (P_f) और स्थिर साधन (F) इस प्रकार लागत फलन बन जाता है,

$$C = f(Q, T, P_f, F)$$

ऐसे विस्तृत लागत फलन के लिए बहु-आयामी चित्रों की आवश्यकता पड़ती हैं जिन्हें खींचना बहुत कठिन है।

लागत फलन के विश्लेषण को सरल बनाने के लिए कुछ मान्यताएँ ली जाती हैं। यह मान लिया जाता है कि फर्म केवल एक अकेली समरूप वस्तु (q) का कुछ उत्पादन के साधनों की सहायता से उत्पादन करती है। अल्पकाल में फर्म का उत्पादन स्तर चाहे कुछ भी हो, इनमें से कुछ साधन स्थिर मात्राओं में लगाए जाते हैं। इसलिए वे दिए हुए मान लिए जाते हैं। बाकी के साधन परिवर्तनशील हैं जिनकी पूर्ति का ज्ञान है और वे स्थिर मार्किट कीमतों पर उपलब्ध हैं। आग, वस्तु के उत्पादन के लिए जो प्रौद्योगिकी प्रयोग की जाती है, उसका ज्ञान होता है और वह स्थिर मान ली जाती है। अन्तिम, यह मान लिया जाता है कि फर्म परिवर्तनशील साधनों को इस प्रकार समायोजित (adjust) करती है कि वस्तु q का दिया हुआ उत्पादन Q न्यूनतम लागत C पर प्राप्त होता है। इस प्रकार कुछ लागत फलन ऐसे व्यक्त किया जाता है,

$$C = f(Q)$$

जिसका मतलब है कि कुल लागत (C)उत्पादन (Q) का फलन (f) है, अन्य साधनों को स्थिर मानते हुए।

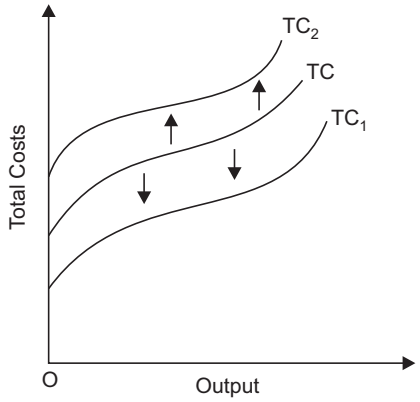

चित्र 2.24

लागत फलन के चित्र Fig. 2.24 में एक कुल लागत (TC) वक्र द्वारा दिखाया जाता है। उत्पादन को समानांतर अक्ष पर और कुल लागत को अनुलंब अक्ष पर लेकर TC वक्र खींचा जाता है, जैसाकि चित्र में दिखाया गया है। यह एक निरंतर वक्र है जिसकी आकृति यह दर्शाती है कि उत्पादन के बढ़ने के साथ कुल लागत भी बढ़ती है। कुल लागत फलन और TC वक्र, दी हुई शर्तों के अन्तर्गत, उत्पादन के साथ कुल लागत का संबंध बतलाते हैं। परन्तु यदि दी हुई शर्तों में से कोई एक जैसे उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन होता है, तो लागत फलन बदल जाता है। उदाहरणार्थ, यदि उत्पादन की तकनीक में सुधार होता है, तो एक दी हुई उत्पादन की मात्रा के लिए उत्पादन की लागत पहले से कम होगी जो नए लागत वक्र TC_1 को पुराने वक्र TC के नीचे सरका देगी, जैसाकि चित्र में दिखाया गया है। दूसरी ओर, यदि साधनों की कीमतें बढ़ जाती हैं, तो उत्पादन लागत में वृद्धि होगी, जो लागत वक्र TC को ऊपर की ओर TC_2 पर सरका देगी, जैसाकि चित्र में है।

लागत फलन अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में पाया जाता है। अल्पकालीन लागतें वे उत्पादन लागतों होती हैं जिन पर एक फर्म एक दी हुई अवधि में कार्य करती है। जब एक या अधिक उत्पादन के साधनों की मात्राएँ स्थिर होती हैं। इसलिए फर्म की कुछ स्थिर लागतें और कुछ परिवर्तनशील लागतें होती हैं। दूसरी ओर, "दीर्घाकालीन लागतें नियोजन लागतें अथवा प्रत्याशित लागतें होती हैं, इसलिए कि वह उत्पादन के प्रसार के लिए इष्टतम संभावनाएँ प्रस्तुत करती हैं और प्रकार उद्यमी को अपनी भावी क्रियाओं को नियोजित करने में सहायक होती हैं।" दीर्घकाल में, उत्पादन के स्थिर साधन बिल्कुल नहीं होते हैं और इसलिए न ही स्थिर लागतें होती हैं। दीर्घकाल में, सभी साधन परिवर्तनशील होने के कारण, सभी लागतें परिवर्तनशील होती हैं। इसलिए फर्म के स्थिर पूँजी साधन दिए होने पर, वह भविष्य के लिए नियोजन करती है। परन्तु वह प्रत्येक प्लांट से संबंधित अल्पकालीन लागत वक्रों पर संचालन करती है।

लागत फलन दिए होने पर हम लागतों के परंपरागत और आधुनिक सिद्धांतों की विवेचना करते हैं।

2.9 लागतों का परंपरागत सिद्धांत (The Traditional Theory of Costs)

लागतों का पंरपरागत सिद्धांत अल्पकाल और दीर्घकाल में लागत वक्रों के व्यवहार का विश्लेषण करता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागत वक्र U-आकार के आकार के होते हैं लेकिन दीर्घकालीन लागत वक्र अल्पकालीन लागत वक्रों की अपेक्षा चपटे होते हैं।

फर्म के अल्पकालीन लागत वक्र (Firm's Short-Run Costs Curves)

अल्पकालीन वह समय होता है जिसमें फर्म अपनी मशीनें, उपकरण और उत्पादन के पैमाने को परिवर्तित नहीं कर सकती। बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए, फर्म अपने उत्पादन को अधिक श्रम और कच्चा माल लगाकर या वर्तमान श्रम शक्ति से अधिक समय काम कराकर ही बढ़ा सकती हैं।

उत्पादन का पैमाना स्थिर होने के कारण, अल्पकालीन कुल लागतें (TC), कुल स्थिर लागतों (TFC) और कुल परिवर्तनशील लागतों में (TVC) विभक्त की जाती है:

$$TC = TFC + TVC$$

कुल लागतें (Total costs) – कुल लागतें एक वस्तु की दी हुई मात्रा को उत्पादित करने में एक फर्म के कुल खर्चे हैं। उनमें लगान, ब्याज, मजदूरी, कर, कच्चे माल, बिजली, पानी, विज्ञापन आदि के खर्च शामिल होते हैं।

कुल स्थिर लागतें (Total Fixed Costs) – ये उत्पादन की वे लागतें हैं जो उत्पादन के साथ परिवर्तित नहीं होती हैं। वे उत्पादन के स्तर से स्वतंत्र होती है। वास्तब में, फर्म को ये लागते उठानी ही पड़ती हैं, यादि फर्म थोड़े समय के लिए उत्पादन बंद कर देती है। इनमें भूमि और बिल्डिंग लगान पर लेने, उधार ली गई मुद्रा पर ब्याज, इंश्योरैंस, सम्पत्ति कर, मूल्यह्रास, स्थायी स्टाफ की मजदूरी और वेतन, आदि भुगतान शामिल होते हैं। इन्हें ऊपरी लागतें (overhead costs) भी कहते हैं।

नोट

कुल परिवर्तनशील लागतें (Total Variable Costs) – वे लागतें हैं जो उत्पादन के साथ सीधे तौर से बदलती हैं। वे उत्पादन के बढ़ने के साथ बढ़ती हैं और उत्पादन के कम होने के साथ कम होती हैं। उनमें कच्चे माल, बिजली, पानी, कर अस्थायी श्रम का नियोजित करना, विज्ञान आदि के खर्चे शामिल होते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष लागतें (direct costs) भी कहते हैं।

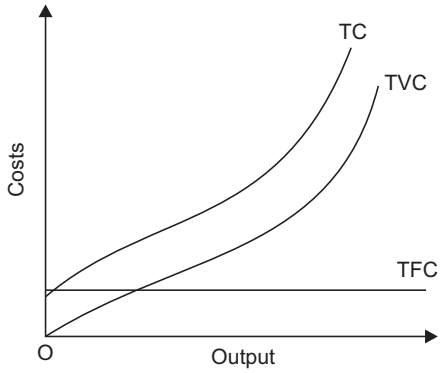

चित्र 2.25

इन तीनों लागतों से संबंधित लागत वक्र को चित्र (Fig. 2.25 देखें) में दिखाया गया है। TC एक निरंतर वक्र है जो यह दर्शाता है कि उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ कुल लागते बढ़ती हैं। यह वक्र अनुलंब अक्ष को मूल से ऊपर एक बिन्दु पर काटता है। और बाएँ से दाएँ ऊपर को निरंतर बढ़ता है। ऐसा इस कारण कि जब फर्म कुछ भी उत्पादन नहीं करती, उस स्थिर लागतें उठानी पड़ती हैं। TFC वक्र को उत्पादन अक्ष के समानांतर दिखाया गया है क्योंकि कुल स्थिर लागतें प्रत्येक उत्पादन स्तर पर समान रहती हैं। TVC वक्र उलटा S- आकार का होता है और मूल O से आरंभ होता है, क्योंकि जब उत्पादन शून्य है तो कुल परिवर्तनशील लागतें भी शून्य होती हैं। उत्पादन के बढ़ने के साथ वे अनुपात में परिवर्तनशील साधन कम प्रयोग करती है, कुल परिवर्तनशील लागतें घटती दर से बढ़ती हैं। परन्तु एक बिन्दु के बाद स्थिर साधनों के अनुपात में परिवर्तनशील साधनों के अधिक प्रयोग से, वे तीव्रता से बढ़ती हैं। ऐसा परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के लागू होने से होता है। क्योंकि TFC वक्र सामनांतर सीधी रेखा है, इसलिए TVC वक्र के साथ-साथ TC वक्र समान अनुलंब अंतर पर चलता है।

अल्पकालीन औसत लागतें (Short-Run Average Costs)

फर्म के अल्पकालीन विश्लेषण में, कुल लागतों से औसत लागतें अधिक महत्त्वपूर्ण है। उत्पादन की जो इकाइयाँ फर्म उत्पादित करती है वे उसे समान लागत की मात्रा पर प्राप्त नही करती हैं। परन्तु उन्हें समान कीमत पर बेचना पड़ता है। इसलिए फर्म को प्रति इकाई लागत या औसत लागत का जानना बहुत जरूरी है। फर्म की अल्पकालीन औसत लागतों में औसत स्थिर लागतें, औसत परिवर्तनशील लागतें और औसत लागतें कुल लागतें शमिल होती हैं।

औसत स्थिर लागतें (Average Fixed Costs)–औसत स्थिर लागतें कुल स्थिर लागतों को कुल उत्पादन से विभक्त करने पर प्राप्त होती हैं: AFC = TFC/Q

क्योंकि उत्पादन के सब स्तरों पर कुल स्थिर लागतें उतनी ही रहती हैं, उत्पादन के बढ़ने पर औसत स्थिर लागतें कम हो जाती हैं। इसलिए AFC वक्र की ढलान नीचे की दाएँ को होती है और वह आयताकार अतिपरवलय (rectangular hyperbola) होता है जैसाकि चित्र में दिखाया गया है।

अल्पकालीन औसत परिवर्तनशील लागतें (Short-Run Average Variable Costs)–औसत परिवर्तनशील लागत, कुल परिवर्तनशील लागत को कुल उत्पादन से विभक्त करने पर प्राप्त होती है:

$$SAVC = TVC/Q$$

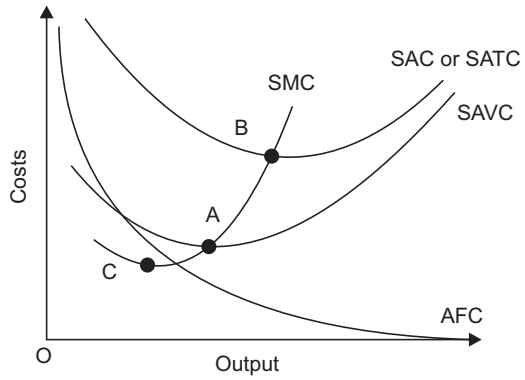

चित्र 2.26

औसत परिवर्तनशील लागतें उत्पादन के बढ़ने के साथ पहले कम होती है; जब परिवर्तनशील साधनों की अधिक मात्राएँ स्थिर प्लांट और उपकरणों पर लागू की जाती है। परन्तु अन्ततः वे घटते प्रतिफल के नियम के कारण बढ़ना प्रारंभ कर देती हैं। इसलिए SAVC वक्र U-आकार का होता है, जैसाकि चित्र (Fig. 2.26 देखें) में दर्शाया गया है।

अल्पकालीन कुल औसत लागतें-SAC या SATC किसी दी हुई उत्पादन मात्रा को उत्पादित करने की औसत लागतें हैं। यदि उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर कुल लागतों को उत्पादित की गई वस्तु की इकाइयों से विभक्त कर दें तो ये प्राप्त होती हैं:

$$\text{SAC या SATC} = \frac{\text{TC}}{\text{Q}} = \frac{\text{TFC}}{\text{Q}} + \frac{\text{TVC}}{\text{Q}} = \text{AFC} + \text{AVC}$$

इस प्रकार, कुल औसत लागतें स्थिर लागतों तथा औसत परिवर्तनशील लागतों का जोड़ हैं और उनके प्रभाव को व्यक्त करती हैं। पहले, उत्पादन के कम स्तरों पर औसत कुल लागतें ऊँची होती हैं, क्योंकि औसत स्थिर और परिवर्तनशील लागतें दोनों ही अधिक होती हैं। परन्तु जब उत्पादन बढता है तो औसत कुल लागतें तीव्रता से गिरती हैं। ऐसा औसत स्थिर लागतें और औसत परिवर्तनशील लागतों में नियमित कमी के कारण होता है, जब तक कि वे न्यूनतम बिन्दु पर नहीं पहुँच जाती हैं। यह आंतरिक किफायतों, वर्तमान प्लांटो, श्रम के बेहतर प्रयोग आदि के परिणामस्वरुप होता है। चित्र में न्यूनतम बिन्दु B इष्टतम क्षमता को व्यक्त करता है। जब उस बिन्दु के बाद उत्पादन बढ़ता है, तो औसत कुल लागतें तीव्रता से बढ़ती हैं, क्योंकि बढ़ रही औसत परिवर्तनशील लागतों में वृद्धि की तुलना में औसत स्थिर लागतों में मामूली-सी कमी होती है। SAC वक्र का ऊपर की ओर गति करता भाग क्षमता से अधिक उत्पादन और प्रबंध, श्रम आदि की आंतरिक अमितव्ययिताओं के परिणामस्वरुप होता है। इस प्रकार SAC वक्र U-आकार का है, जैसाकि चित्र (Fig. 2.27 देखें) से स्पष्ट है।

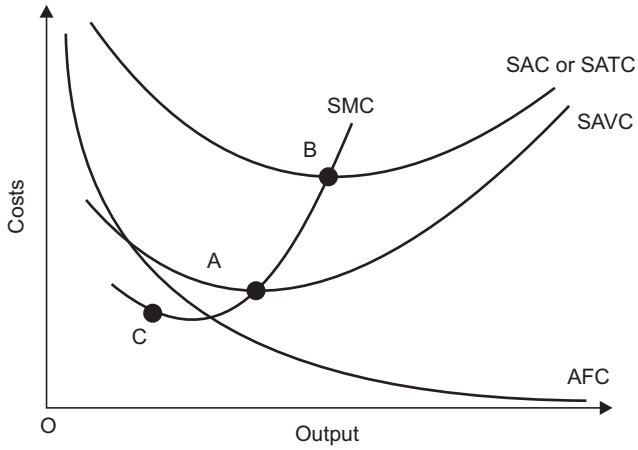

चित्र 2.27

नोट

SAC वक्र की U-आकृति की व्याख्या परिवर्तनशील अनुपात के नियम द्वारा भी की जाती हैं। यह नियम बताता है कि जब अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखकर, एक परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाया जाए तो कुल उत्पादन बढ़ता है परन्तु एक निश्चित सीमा के बाद घटता चला जाता है अल्पकालीन में किसी भी फर्म की मशीनें, उपकरण और उत्पादन का पैमाना परिवर्तित नहीं होते, इसलिए ये इसके स्थिर साधन हैं। जबकि श्रम, कच्चा माल जैसे साधन परिवर्तनशील होते है। स्थिर साधनों पर इन परिवर्तनशील साधनों की मात्रा को लगातार बढाते चले जाने से ही, परिवर्तनशील अनुपात का नियम लागू होता है। जब एक परिवर्तनशील साधन जैसे श्रमिकों की मात्रा को समान इकाइयों में बढाया जाता है तो एक सीमा तक उत्पादन बढता है, जब तक कि मशीनों, उपकरणों आदि स्थिर साधनों का उनकी पूरी क्षमता तक प्रयोग नहीं होता। इस अवस्था में उत्पादन बढने के साथ फर्म की औसत लागतें कम होती हैं। क्योंकि उसे कई प्रकार की आन्तरिक किफायतों के कारण भी बढते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। बढ़ते प्रतिफल के नियम की क्रियाशीलता के कारण श्रमिकों की संख्या को और बढ़ाने से फर्म मशीनों की इष्टतम क्षमता पर जब पहुँचती है तो उसका उत्पादन भी इष्टतम होता है और इसी स्तर पर औसत लागत न्यूनतम होगी जो चित्र में SAC वक्र का न्यूनतम बिन्दु B दर्शाती है। इस अवस्था के बाद यदि फर्म श्रमिकों की संख्या को और बढ़ाने का प्रयत्न करती है तो मशीनों, उपकरणों व प्रबन्ध आदि स्थिर साधनों का क्षमता से अधिक प्रयोग होगा जिससे आन्तरिक अलाभों के कारण घटते प्रतिफल प्राप्त होंगे और औसत लागतें तीव्र गति के साथ बढ़ती चली जाएँगी। अत: फर्म में परिवर्तनशील अनुपात का नियम लागू होने के कारण भी अल्पकालीन औसत लागत वक्र U-आकृति का होता है।

सीमान्त लागत **(MC)**-फर्म के उत्पादन के सही स्तर को निर्धारित करने की आधारभूत धारणा सीमान्त लागत है। $MC = \Delta TC/\Delta Q$. बीजगणित से, यह उत्पादन की $n + 1$ इकाइयों और n इकाइयों की लागतों का अन्तर होती है, $MC_n = TC_n - TC_{n-1}$ क्योंकि कुल लागतें उत्पादन के साथ नहीं बदलती, इसलिए सीमांत स्थिर लागत शून्य होती है। इसलिए सीमान्त लागत को कुल परिवर्तनशील लागतों अथवा कुल लागतों से गणना की जा सकती है दोनों तरह से परिणाम समान ही होगा। क्योंकि कुल परिवर्तनशील लागतें या कुल लागतें पहले गिरती है और फिर बढ़ती है, इसलिए सीमान्त लागत भी इसी प्रकार व्यवहार करती है और SMC वक्र भी U-आकार का होता है, जैसाकि चित्र में दिखाया गया है।

अल्पकालीन लागत वक्रों में संबंध (Relationships of Short-Run Cost Curves)

अल्पकालीन लागत वक्रों के बीच संबंधों को चित्र द्वारा व्यक्त किया गया है

(क) AFC वक्र निरंतर गिरता जाता है और दोनों अक्षों से समान दूरी पर गति करता है परन्तु X- अक्ष अथवा Y- अक्ष को छूता नहीं है। यह अतिपरवलयाकार (rectangular hyperbola) है।

(ख) SAVC वक्र पहले गिरता है फिर A बिन्दु पर न्यूनतम होता है और उसके पश्चात् बढ़ता है। जब SAVC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु A पर पहुँचता है, तो SMC वक्र उसके बराबर होता है, अर्थात् उस बिन्दु पर काटता है।

(ग) SAC वक्र पहले गिरता है, 'न्यूनतम बिन्दु B पर पहुँचता है और उसके बाद ऊपर की ओर बढ़ता है। जब SAC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु B पर पहुँचता है तो SMC वक्र उसके बराबर होता है, क्योंकि SAC = AFC + SAVC, इसलिए SAC और SAVC वक्रों के बीच अनुलंब दूरी AFC वक्र होती है। अत: अलग से एक AFC वक्र खींचने की कोई आवश्यकता नही है। जब उत्पादन कम होता है तो SAC और SAVC वक्रों के बीच की अनुबंध दूरी कम होती जाती है, क्योंकि AFC वक्र निरंतर गिरता है।

(घ) AC और MC वक्रों में संबंध (Relationship between AC and MC Curve)–AC और MC वक्रों में सीधा संबंध होता है। AC और MC वक्र दोनों U- आकार के होते हैं, जैसाकि चित्र में दिखाया गया है। जब AC वक्र गिरता है तो AC वक्र से MC वक्र नीचे होता है। ऐसा इसलिए कि MC में कमी उत्पादन की एक इकाई से संबंधित होती है, जबकि AC के बारे में वही कमी उत्पादन की सभी इकाइयों में फैलती हैं। यह कारण है कि AC में कमी कम होती है और MC में अधिक। यह इस तथ्य

नोट

की भी व्याख्या करता है कि AC वक्र के अपने न्यूनतम बिन्दु B पर पहुँचने से पहले MC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु C पर पहुँचता है। अत: जब MC वक्र ऊपर को बढ़ना प्रारंभ करता है तो AC वक्र अभी गिर रहा होता है।

जब AC वक्र अपने न्यूनतम बिन्दु पर होता है, तो MC वक्र उसके बराबर होता है और उसे नीचे से उसके न्यूनतम बिन्दु B पर काटता है, जैसा कि चित्र (Fig. 2.28 देखें) से स्पष्ट है।

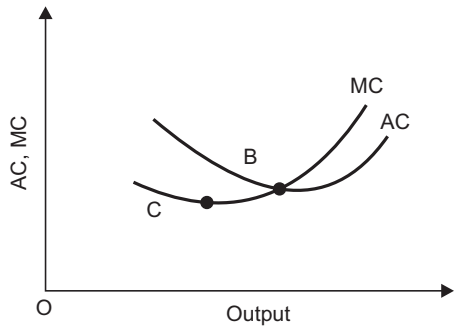

चित्र 2.28

जब AC वक्र ऊपर की ओर बढ़ रहा होता है, तो MC वक्र उससे ऊपर होता है परन्तु MC वक्र में वृद्धि AC वक्र से अधिक होती है। ऐसे में वृद्धि AC वक्र से अधिक होती है। ऐसा इसलिए कि MC में वृद्धि उत्पादन की एक इकाई के कारण होती है, जबकि AC के लिए वही वृद्धि उत्पादन की सभी इकाईयों में फैलती है।

यह ध्यान देने योग्य है कि जब AC बढ़ती या कम होती है, तो हम MC वक्र की दिशा के बारे में कुछ नहीं कर सकते। जब AC कम हो रही होती है, तो यह आवश्यक नहीं कि MC भी आवश्यक कम हो। MC बढ़ या कम हो सकती है, पर यह निश्चित है कि AC वक्र से MC वक्र नीचे होगा। इसी प्रकार, जब AC बढ़ रही होती है, तो यह आवश्यक नहीं कि MC भी आवश्य बढ़े। MC बढ़ या कम हो सकती है लेकिन यह निश्तित है कि MC वक्र AC वक्र से ऊपर होगा। परन्तु यदि AC स्थिर है तो MC अवश्य स्थिर होगी, अर्थात् AC और MC वक्र एक समानांतर रेखा होगा।

AC और MC में यह संबंध अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में लागू होगा। दोनों अवस्थाओं में केवल AC और MC वक्रों के आकार में अंतर होगा।

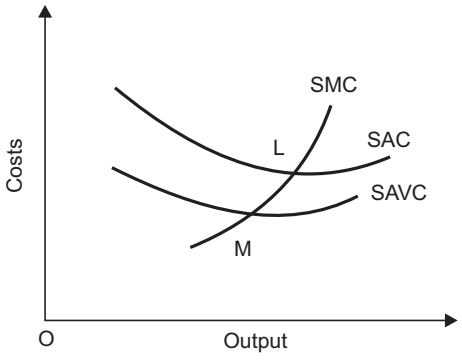

चित्र 2.29

SMC और SAVC वक्रों में संबंध (Relation between SMC and SAVC Curves)–SMC वक्र का AVC और SAC वक्रों के साथ निकट संबंध है। जब तक SMC वक्र SAVC और SAC वक्रों के नीचे स्थित होता है, यह गिरता जाता है और इसकी गिरने की दर SAVC और SAC वक्रों की दर से अधिक होती है। परन्तु जहाँ MC वक्र उनको काटता है उन बिन्दुओं से SAVC और SAC वक्र ऊपर की ओर बढ़ने लगते है जैसा कि चित्र में क्रमश:

नोट

बिन्दु M और L है। ये दोनों वक्रों के न्यूनतम बिन्दु हैं। परन्तु AVC वक्र का न्यूनतम बिन्दु M, वक्र SAC के न्यूनतम बिन्दु L के बाई ओर हैं जिसमें से SMC वक्र पहले गुजरता है। इसका कारण यह है कि SAV/SAVC + AFC इसलिए जब SAVC अपने न्यूनतम बिन्दु पर होती है तो AFC कम हो रही होती है और SAC को अपने न्यूनतम बिन्दु तक पहुचंने में समय लगता है। इस तरह M और L क्रमशः SAVC और SAC वक्रों के न्यूनतम बिन्दु हैं। इन बिन्दुओं के बाद SMC वक्र तेजी के साथ ऊपर की ओर बढ़ता है और SAVC और SAC वक्रों से ऊपर होता है। (Fig. 2.29 देखें)

निष्कर्षः इस प्रकार, एक फर्म के अल्पकालीन वक्र SAVC, AFC, SAC और SMC होते है। इन चार वक्रों में से AFC वक्र फर्म के उत्पादन स्तर को निर्धारण करने में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। यही कारण है कि इसकी लागत विश्लेषण में उपेक्षा की जाती है।

फर्म के दीर्धकालीन लागत वक्र (Firm's Long-Run Cost Curves)

दीर्धकाल में उत्पादन के स्थिर साधन नहीं होते हैं, इसलिए स्थिर लागतें भी नहीं होती है, फर्म अपने प्लांट का आकार या पैमाना बदल सकती है और कम अथवा अधिक साधन लगा सकती है। इस तरह दीर्धकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। अतः सभी लागतें परिवर्तनशील हैं।

LAC वक्र–फर्म का दीर्धकाल औसत कुल लागत या LAC वक्र सभी संभव अल्पकालीन औसत लागत वक्रों (SAC) से उत्पादन के विभिन्न स्तरों को उत्पादित करने की न्यूनतम औसत लागत को दर्शाता है। अतः SAC वक्रों से LAC वक्र को व्युत्पन्न किया जाता है। LAC वक्र को इस प्रकार समझा जा सकता हैः यह एक वैकल्पिक अल्पकालीन स्थितियों की श्रृंखला है, जिनमें से फर्म किसी एक में जा सकती है। प्रत्येक SAC वक्र एक विशेष आकार के प्लांट को व्यक्त करता है जो उत्पादन की एक विशेष रेंज के लिए उपयुक्त है। इसलिए फर्म, विभिन्न प्लांटों का उस स्तर तक ही प्रयोग करेगी, जहाँ तक उत्पादन में वृद्धि के साथ अल्पकालीन औसत लागतें कम होती जाएंगी। वह फर्म सब प्लांटों को इक्ट्ठा प्रयोग करके उत्पादन की न्यूनतम अल्पकालीन औसत लागत के स्तर के बाद और उत्पादन नहीं करेगी।

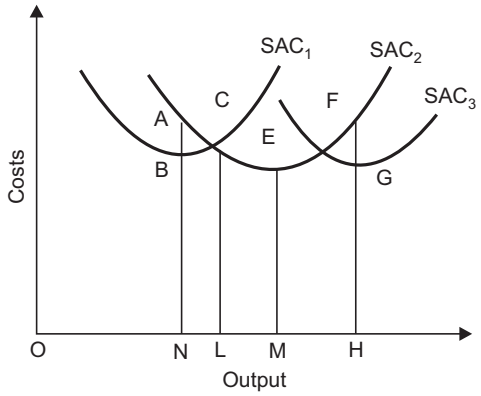

चित्र 2.30

मान लिजिए कि फर्म के तीन प्लांट हैं जिन्हें SAC_1, SAC_2 और SAC_3 वक्रों द्वारा चित्र में व्यक्त किया गया है। प्रत्येक वक्र फर्म के पैमाने को प्रकट करता है। SAC_1 छोटे पैमाने की सूचना देता है जबकि SAC_2 वक्र से SAC_3 पर जाना यह बताता है कि फर्म का आकार बढ़ गया है। (Fig. 2.30 देखें)

फर्म का यह पैमाना दिए होने पर, वह उत्पादन की प्रति–इकाई की न्यूनतम लागत तक उत्पादन करेगी। उत्पादन की ON मात्रा के लिए फर्म SAC_1 या SAC_2 प्लांट का प्रयोग कर सकती है। पर फर्म SAC_1 द्वारा प्रकट किए गए प्लांट का प्रयोग करेगी क्योंकि उत्पादन की ON मात्रा के उत्पादन की औसत लागत NB है जो इस मात्रा के SAC_2 प्लांट पर उत्पादन की लागत की NA से कम है। यदि फर्म को उत्पादन की OL मात्रा का उत्पादन करना हो, तो

वह दोनों में से किसी एक प्लांट पर उत्पादन करेगी। परन्तु OL उत्पादन के लिए फर्म को SAC_2 प्लांट का प्रयोग करना लाभदायक रहेगा क्योंकि इस प्लांट से निम्नतम औसत लागत ME पर उत्पादन की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा OM प्राप्त की प्लांट की औसत लागत HF से SAC_3 प्लांट की औसत लागत HG कम है। अत: दीर्धकाल में फर्म उत्पादन की किसी भी मात्रा का उत्पादन करने के लिए उस प्लांट का प्रयोग करेगी जिस पर प्रति-इकाई लागत न्यूनतम होती है यदि फर्म अपने पैमाने को क्रमश: SAC_1, SAC_2 और SAC_3 वक्रों द्वारा व्यक्त की गई अवस्थाओं मे फैलाती है, तो इन वक्रों के गहरी तरंगों जैसे भाग दीर्धकालीन औसत लागत वक्र बनाते हैं। SAC वक्रों के बिन्दुकित भाग दीर्घकालीन में कोई महत्त्व नहीं रखते क्योंकि प्लांटों के इन भागों पर उत्पादन करने की बजाए फर्म प्लांट के पैमाने को बदल देगी।

परन्तु दीर्धकालीन औसत लागत वक्र LAC को SAC वक्र के साथ जुड़े हुए समतल वक्र के रूप में इस प्रकार दिखाया जाता है कि वह किसी-न-किसी बिन्दु पर उन वक्रों को स्पर्श करे जैसा कि चित्र (Fig. 2.31 देखें) में, जहाँ वक्र SAC_1, SAC_2, SAC_3, SAC_4 और SAC_5 अल्पकालीन औसत लागत वक्र है। LAC वक्र इन SAC वक्रों को स्पर्श करता है पर एक वक्र को केवल उसके न्यूनतम बिन्दु पर ही। चित्र में वक्र SAC, के निम्नतम बिन्दु E पर LAC स्पर्श करता है, और OQ इष्टतम उत्पादन है। यह प्लांट SAC_3 जो न्यूनतम लागत QE पर इष्टतम उत्पादन OQ उत्पादित करता है, इष्टतम प्लांट है और जो फर्म इस इष्टतम प्लांट से इष्टतम उत्पादन का न्यूनतम लागत से उत्पादन करती है, इष्टतम् फर्म कहलाती है। यदि फर्म उत्पादन की इष्टतम मात्रा OQ से कम उत्पादन करती है, तो वह अपने प्लांटो को पूरी क्षमता तक नहीं चला रही और यदि OQ से अधिक उत्पादन करती है, तो वह क्षमता से अधिक प्लांटों से चला रही है। दोनों अवस्थाओं में औसत उत्पादन लागत ऊँची होने के कारण फर्म न्यूनतम लागत QE पर ही उत्पादन करेगी। क्योंकि SAC_2 और SAC_4 प्लांटो की औसत उत्पादन लागतें SAC_3 प्लांट से अधिक है।

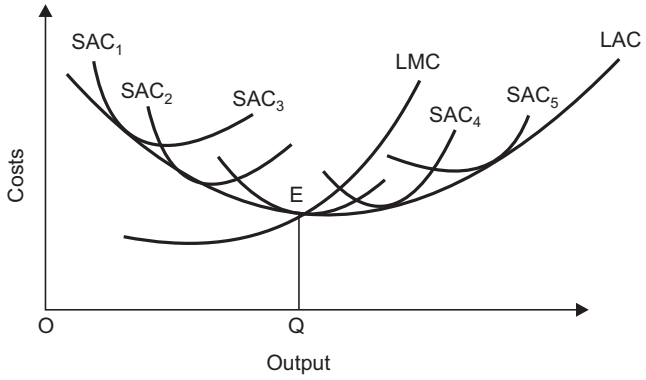

चित्र 2.31

LAC वक्र को लिफाफा वक्र (envelope curve) कहते हैं क्योंकि यह सब SAC वक्रों को लपेट लेता है। स्टोनियर और हेग के अनुसार, "एक प्रकार से वेष्टन शब्द भ्रामक है। शारीरिक रूप से लिफाफा उस पत्रा से भिन्न होता है जो उसमें है। परन्तु दीर्धकालीन लागत लिफाफा वक्र का हर बिन्दु उन अल्पकालीन लागत वक्रों का भी बिन्दु होता है जिन्हें वह लपेटता है।" प्रोफेसर चैम्बरलेन के अनुसार, "यह प्लांट वक्रों का बना होता है, इसलिए यह प्लांट वक्र है। परन्तु इसे 'योजना' वक्र कहना अधिक उचित है क्योंकि दीर्धकाल में फर्म उत्पादन के पैमाने का विस्तार करने की योजना बनाती है।"

LMC वक्र-फर्म का दीर्धकालीन सीमांत लागत (LMC) वक्र SAC वक्रों से व्युत्पन्न किया जाता है, जैसाकि चित्र (Fig. 2.32 देखें) में दर्शाया गया है जहाँ SAC_1, SAC_2 और SAC_3 वक्र क्रमश: बिन्दुओं C, E और D पर LAC वक्र द्वारा स्पर्श होते हैं। X- अक्ष पर इन बिन्दुओं से क्रमश: CQ_1, EQ_2 और DQ_3 लंब गिराओ। जब A, E और B बिन्दुओं पर जहाँ SMC_1, SMC_2 और SMC_3 वक्र इन अनुलंब रेखाओं को काटते हैं, उन्हें मिला दिया जाए तो वे LMC वक्र को ट्रेस करते हैं। SAC_2 और LAC वक्रों को LMC वक्र न्यूनतम बिन्दु E पर काटता है, जिससे $LCM - LAC = SAC_2 = SAC_2$, इस प्रकार, सीमांत और औसत लागत वक्रों में सामान्य संबंध बनाए जाते हैं। E के बाई ओर LAC > LMC और इसके दाई ओर LMC > LAC.

नोट

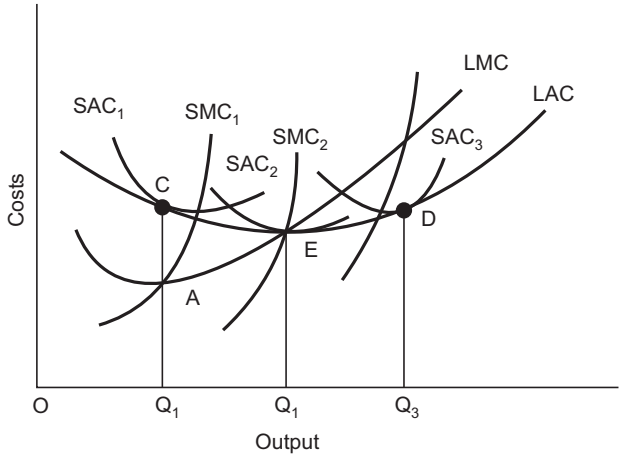

चित्र 2.32

SAC वक्र की उपेक्षा LAC अधिक चपटा (LAC Curve Flatter than SAC Curve)

यद्यपि LAC वक्र U के आकार का होता है, फिर भी, यह SAC वक्र की उपेक्षा अधिक चपटा होता है। इसका अभिप्राय है कि LAC वक्र पहले धीरे-धीरे नीचे को जाता है और न्यूनतम बिन्दु आने के बाद धीरे-धीरे ऊपर चढ़ता है। व्यक्तिगत साधनों के मितव्ययी प्रयोग, बढ़े हुए विशेषीकरण और तकनीकी रूप से बढ़िया मशीनों और साधनों के प्रयोग से पैमाने की कुछ किफायतें प्राप्त होने के कारण शुरू में LAC वक्र धीरे-धीरे नीचे को ढाले होता है। दीर्धकालीन में पैमाने के प्रतिफल का नियम फर्म के उत्पादन पर लागू होता है जिसके कारण प्रारम्भ में उत्पादन के साधनों की अविभाज्यता साधनों से उनकी अधिकतम क्षमता के अनुसार काम किया जाता है जिससे प्रति इकाई लागत कम होती है। चैम्बरलेन ऊपर व्यक्त किए गए कॉलडर और जॉन रबिन्सन की अविभाज्यता की धारणा को स्वीकार नहीं करता। वह विशेषीकरण और श्रम-विभाजन को पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का कारण मानता है। जब फर्म के पैमाने का विस्तार होता है तो श्रम और उपकरणों का विशेषीकरण बढ़ जाता है। काम छोटे-छोटे भागों में बाँटा जाता है और श्रमिक, प्रक्रियाओं के छोटे क्षेत्रों की ओर ध्यान दे सकते हैं। इसके लिए विशेषीकृत उपकरण लगाए जाते हैं और दक्षता बढ़ती है जिससे पैमान का प्रतिफल बढ़ता है और औसत लागत कम होती है। इतना ही नहीं, फर्म बाहरी किफायतों के कारण भी पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का उपभोग करती है। जब दीर्धकालीन में उद्योग का विस्तार होता है जो बहुत-सी बाहरी किफायतें प्रकट होती हैं जिनका उद्योग की सभी फर्में बाँटकर उपभोग करती है जैसे कुशल श्रम, उधार, परिवहन आदि की सुविधाएँ जिनसे प्रति इकाई दीर्घकालीन लागत कम होती जाती है।

जब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का न्यूनतम बिन्दु आ जाता है तो उसके बाद उत्पादन के पैमाने के विस्तार के साथ उत्पादन के लिए निश्चित क्षेत्र में LAC वक्र चपटा हो जाता है। तब मितव्ययिताएँ और अमितव्ययिताएँ एक-दूसरे को संतुलित करती हैं और LAC वक्र का आधार डिस्क-आकार हो जाता है। पैमाने का और विस्तार होने पर तालमेल, प्रबन्ध, श्रम और यातायात की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें LAC वक्र बढ़ती है शुरु कर देता है। कॉलडर के अनुसार ऐसा तब होता है जब उत्पादन के पैमाने के बहुत अधिक बढ़ने से अविभाज्य साधन दक्षतारहित और कम उत्पादक बन जाते है। जब चैम्बरलेन का यह कथन है कि प्रबन्ध और नियंत्रण की कठिनाइयाँ उत्पन्न होने से प्रति इकाई लागत बढ़ती है। इन आन्तरिक अमितव्ययिताओं के साथ बाहरी अमितव्ययिताएँ भी मिल जाती हैं जो ऊँची साधन कीमतों या साधनों की धटती उत्पादकता से उत्पन्न होती है। जब उद्योग का विस्तार जारी रहता है तो प्रशिक्षित श्रम, पूँजी आदि की माँग बढ़ जाती है। जिससे मजदूरी, ब्याज, लगान आदि बढ़ते हैं। कच्चे माल की कीमतें भी चढ़ जाती हैं। यातायात और मार्किटिंग की समस्या भी पैदा हो जाती है। इन सब कारणों से जब पैमाने की प्रतिफल घटता है तो लागतें बढ़ने लगती हैं। दोनों में से हर स्थिति में LAC वक्र SAC वक्र की अपेक्षा अधिक धीरे गिरता या चढ़ता है क्योंकि दीर्घकालीन में सब लागतें परिवर्तनशील बन जाती हैं और स्थिर लागत कोई नहीं होती। प्लांट और उपकरण बदल तथा उत्पादन के अनुरूप बनाए जा सकते हैं। वर्तमान साधनों को पूरी तरह और दक्षता से काम में

नोट

लाया जा सकता है जिनके कारण अल्पकालीन की अपेक्षा दीर्धकालीन में औसत स्थिर तथा औसत परिवर्तन दोनों ही लागतें कम होती हैं। यही कारण है कि SAC वक्र की अपेक्षा LAC वक्र अधिक चपटा होता है।

इसी प्रकार, SMC वक्र की अपेक्षा LMC वक्र अधिक चपटा होता है क्योंकि सब लागतें परिवर्तनशील होती है और स्थिर लागत कोई नही होती है। अल्पकालीन में सीमान्त लागत स्थिर और परिवर्तनशील दोनों लागतों से सम्बन्धित होती है। परिणामस्वरूप SMC वक्र LMC वक्र की अपेक्षा अधिक तेजी से गिरता और चढ़ता है। LMC वक्र का LAC वक्र से सामान्य सम्बन्ध ही होता है। यह पहले गिरता है और LAC वक्र से सामान्य सम्बन्ध ही होता है। यह पहले गिरता है और LAC वक्र के नीचे होता है। फिर चढ़ता है और LAC वक्र को न्यूनतम बिन्दु E पर काटता है और फिर सदैव LAC वक्र से ऊपर रहता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

2.10 लागतों का आधुनिक सिद्धांत (The Modern Theory of Costs)

लागतों का आधुनिक सिद्धांत लागतों के परंपरागत सिद्धांत से लागत वक्रों के आकार में भिन्न है। परंपरागत सिद्धांत में, लागत वक्र U- आकार के आकार के होते हैं। परन्तु आधुनिक सिद्धांत में जो आनुभविक प्रमाणों पर आधारित हैं। SAVC वक्र और SMC वक्र एक दूसरे के साथ मेल खाते हैं और उत्पादन के एक विस्तृत रेंज पर एक सामानांतर सीधी रेखा होते हैं। जहाँ तक LAC और LMC वक्रों की बात है, वे U- आकार की बजाए L- आकार के होते हैं। हम अल्पकालीन और दीर्धकालीन लागत वक्रों की प्रकृति की विवेचना करते हैं।

1. अल्पकालीन लागत वक्र–परंपरागत सिद्धांत की तरह, लागतों के आधुनिक सिद्धान्त में AFC, SAVC, SAC और SMC अल्पकालीन लागत वक्र होते हैं। वे भी कुल लागतों से व्युत्पन्न किए जाते हैं जो कुल स्थिर लागतों और कुल परिवर्तनशील लागतों में विभाजित होती है।

परन्तु आधुनिक सिद्धांत में, SAVC और SMC वक्रों की U- आकृति न होकर तश्तरी का कटोरा आकृति होती है। क्योंकि AFC वक्र आयताकार अतिपरवलय होता है, इसलिए SAC वक्र की आकृति आधुनिक व्याख्या में भी U- आकार की होती है। अर्थशास्त्रियों ने SAC वक्रों के इस व्यवहार ढ़ाचे की आनुभाविक अध्ययनों के आधार पर जांच की है। उनके अनुसार, एक आधुनिक फर्म ऐसा प्लांट चुनती है जो वह उपलब्ध परिवर्तनशील प्रत्यक्ष साधनों से सुगमता के साथ चला सकती है। ऐसे प्लांट में कुछ रिजर्व क्षमता और बहुत लोचशीलता पाई जाती है। फर्म अपनी वस्तु की माँग में वृद्धि को पूरा करने हेतु, विस्तृत रेंज में अधिकतम उत्पादन की दर उत्पादित करने के लिए, इस प्रकार के प्लांट को स्थापित करती है। तश्तरी–आकार के SAVC और SMC वक्रों को चित्र में दिखाया गया है। प्रारंभ में, दोनों वक्र पहले बिन्दु A तक गिरते है और SAVC वक्र से ऊपर SMC वक्र स्थित होता है। SAVC वक्र का गिरता भाग, स्थिर साधन के बेहतर उपयोग और परिणामस्वरूप परिवर्तनशील साधन (श्रम) की दक्षताओं और उत्पादकता में वृद्धि के कारण, लागतों में कमी को दर्शाता है। बेहतर दक्षताओं के साथ कच्चे मालों के अपव्यय भी कम होते हैं। तथा समस्त प्लांट के बेहतर उपयोग पर पहुँच जाते हैं। जहाँ तक उत्पादन की Q_1Q_2 रेंज पर तश्तरी आकार के SAVC वक्र के चपटे भाग का संबंध है, आनुभाविक प्रमाण यह व्यक्त करता है कि इस विस्तृत रेंज में एक प्लांट का कार्यकरण पैमाने के स्थिर प्रतिफल दर्शाता है। तश्तरी–आकृति के SAVC वक्र का कारण यह है कि स्थिर साधन विभाज्य है। SAV लागतें एक बड़ी रेंज पर उस बिन्दु तक स्थिर होती हैं जिस पर समस्त स्थिर साधन प्रयोग होते हैं। फिर, फर्म की SAV लागतें उत्पादन के एक विस्तृत रेंज पर स्थिर होती हैं क्योंकि जो प्लांट चालू रखे जाते हैं उनमें श्रम और पूँजी के इष्टतम संयोग से हटने की आवश्यकता नहीं है। अत: उत्पादन की इस बड़ी रेंज पर SAVC वक्र चपटा होगा, SMC वक्र इसके बराबर होगा और प्रति इकाई उत्पादन स्थिर होगा। इसलिए फर्म प्लांट की Q_1Q_2 रिजर्व क्षमता के बीच उत्पादन करती रहेगी, जैसा कि चित्र में (चित्र 2.33 देखें) दिखाया गया है।

B बिन्दु के बाद, SAVC और SMC वक्र ऊपर की ओर चढ़ना प्रारम्भ करते हैं। जब फर्म Q_2 से आगे उत्पादन की ऊँची दरें प्राप्त करने के लिए प्लांट के सामान्य या लोड फैक्टर से परे हटती है, तो इससे SAVC और SMC दोनों बढ़ती हैं। लागतों में वृद्धि पुराने और कम दक्ष प्लांट को ओवरटाइम चलाने से हो सकती है, जिससे बार–बार मशीनों का खराब होना, कच्चे माल का अपव्यय, श्रम उत्पादकता में कमी और ओवरटाइम कार्य करने से श्रम लागत में वृद्धि का होना है। B बिन्दु के आगे SAVC वक्र के बढ़ते भाग में SMC वक्र उससे ऊपर होता है।

नोट

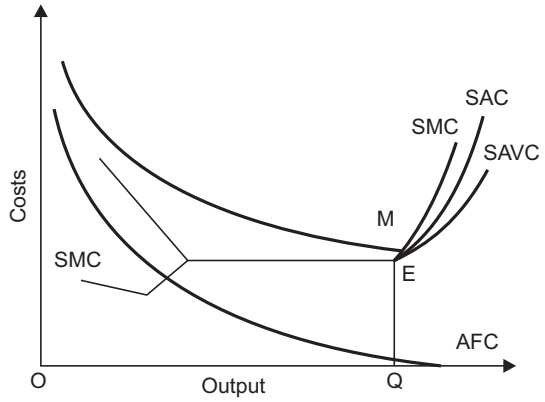

चित्र 2.33

अल्पकालीन औसत कुल लागत वक्र SAC या SATC को उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर AFC वक्र और SAVC वक्र को अनुलंब तौर से जोड़कर प्राप्त किया जाता है। जैसा कि चित्र (Fig. 2.33 देखें) में दर्शाया गया है SAC वक्र उत्पादन के Q स्तर तक गिरता चला जाता है इस स्तर पर प्लांट की रिजर्व क्षमता पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। इस उत्पादन स्तर के पश्चात् SAC वक्र उत्पादन बढ़ाने के साथ ऊपर की ओर गति करता है। उत्पादन के Q स्तर तक SAC वक्र की समतल और निरंतर गिरावट, इस कारण है कि AFC वक्र आयताकार अतिपरवलय है और SAVC वक्र पहले गिरता है और फिर रिजर्व क्षमता के रेंज के बीच समानांतर हो जाता है। उत्पादन स्तर Q के आगे, यह सीधा ऊपर की ओर बढ़ना शुरू कर देता है। परन्तु SAC वक्र का न्यूनतम बिन्दु M, जहाँ SMC वक्र इस को काटता है, SAVC वक्र के बिन्दु E के दाईं ओर है। ऐसा इस कारण कि SAVC पर E बिन्दु सीधा ऊपर बढ़ना प्रारंभ करता है जबकि AFC वक्र कम दर से गिर रहा है।

2. **दीर्धकालीन लागत वक्र (Long-Run Cost Curves)**–दीर्धकालीन औसत लागत के बारे में आनुभविक प्रमाण बताते हैं कि LAC वक्र L आकृति का होता है न कि U आकृति का। शुरू में, LAC वक्र तीव्रता से गिरता है परन्तु एक बिन्दु के पश्चात् वक्र चपटा रहता है, या अपने दाएँ हाथ के छोर पर नीचे की ओर धीर से ढालू हो सकता है। अर्थशास्त्रियों ने LAC वक्र के L- आकृति को समझने के लिए उत्पादन और प्रबंधकीय लागतों के व्यवहार का विश्लेषण करते हैं।

उत्पादन और प्रबंधकीय लागतें (Production and Managerial Costs)–दीर्धकाल में, समस्त लागतें परिवर्तनशील होने के कारण, जब औसत लागतों पर उत्पादन के प्रसार के प्रभाव पर विचार किया जाता है, तो फर्म की उत्पादन और प्रबंधकीय लागतों को ध्यान में रखा जाता है जब उत्पादन बढ़ता है तो उत्पादन लागतें लगातार कम होती जाती है, जबकि प्रबंधकीय लागतें उत्पादन के बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ सकती है। परन्तु उत्पादन बढ़ने के साथ LAC वक्र गिरता है। हम LAC वक्र की L- आकृति को समझने के लिए उत्पादन और प्रबंधकीय लागतों के व्यवहार का विश्लेषण करते हैं।

उत्पादन लागतें (Production Costs)–जब एक फर्म अपने उत्पादन के पैमाने को बढ़ाती है, तो प्रारंभ में उसकी उत्पादन तीव्रता से कम होती हैं और फिर धीरे-धीरे। ऐसा फर्म द्वारा बढ़े पैमाने की तकनीकी किफायतें प्राप्त करने से होता है। शुरू में, ये किफायतें काफी होती हैं। परन्तु उत्पादन के एक विशेष स्तर के बाद जब अधिकतर या सभी किफायतें प्राप्त हो जाती हैं, तो फर्म न्यूनतम इष्टतम पैमाने या न्यूनतम दक्ष पैमाने पर पहुँच जाती है। उद्योग ने की प्रोद्यौगिकी दी होने पर, फर्म न्यूनतम दक्ष पैमाने से अधिक उत्पादन स्तर पर निम्न कारणों से कुछ तकनीकी किफायतों का लाभ उठा सकती है: (क) आगे और विकेन्द्रीकरण तथा श्रम की उत्पादकता और कुशलताओं में सुधार में; (ख) फर्म के एक विशेष आकार पर पहुँचने के बाद कम मरम्मत लागतों से; और (ग) दूसरी फर्मों से खरीदने की बजाए, स्वयं कुछ साज-सामान और उपकरण का सस्ता उत्पादन करके, जिनकी फर्म को आवश्यकता होती है।

प्रबंधकीय लागतें (Managerial Costs)–आधुनिक फर्मों में, प्रत्येक प्लांट के बिना रुकावट के कार्यकरण के लिए एक प्रबंधकीय ढाँचा होता हैं प्रबंध के विभिन्न स्तर होते हैं, जिनमें से प्रत्येक की एक अलग प्रबंध तकनीक होती है जो उत्पादन के एक विशेष स्तर पर लागू होती है। इस प्रकार, एक प्लांट के लिए एक प्रबंध ढांचा दिया होने पर, इसकी प्रबंधकीय लागतें उत्पादन के बढने के साथ पहले गिरती हैं और उत्पादन के केवल बहुत थोड़े पैमाने पर वे धीरे-धीरे बढ़ती है।

संक्षेप में, उत्पादन के बहुत बडे पैमानों पर, उत्पादन बिना रुकावट के गिरती है और प्रबंधकीय लागतें धीरे-धीरे बढ़ती है। परन्तु उत्पादन लागतों मे कमी प्रबंधकीय लागतों में वृद्धि को अधिक निष्प्रभावित करती है जिससे LAC वक्र उत्पादन के बहुत बड़े पैमाने पर निर्विघ्न गिरता है या चपटा हो जाता है। इससे LAC वक्र की L- आकृति उत्पन्न होती है।

इस प्रकार का LAC वक्र खींचने के लिए हम तीन अलकालीन औसत लागत वक्र SAC_1, SAC_2 और SAC_3 लेते हैं जो समान प्रौद्योगिकी के तीन प्लांटों को व्यक्त करते हैं, जैसा कि चित्र (Fig. 34 देखें) में दर्शाया जाता है। प्रत्येक SAC वक्र में उत्पादन लागतें, प्रबंधकीय लागतें, अन्य स्थिर लागतें और सामान्य लाभ के लिए अतिरिक्त राशि शामिल होती हैं प्रत्येक प्लांट का पैमाने (SAC) एक विशिष्ट लोड फैक्टर क्षमता से प्रतिबंधित होता, जिससे A, B और C बिन्दु प्रत्येक प्लांट के उत्पादन के न्यूनतम इष्टतम पैमाने को व्यक्त करते हैं। एक बड़ी संख्या के SAC_s के A, B, C आदि जैसे सभी बिन्दुओं को मिलाने से हमें एक निर्विघ्न निरंतर LAC वक्र होता है, जैसा कि चित्र से स्पष्ट है। यह वक्र उत्पादन के बहुत बड़े पैमाने पर ऊँचे की ओर नहीं मुड़ता है। यह SAC वक्रों को नहीं घेरता बल्कि प्रत्येक प्लांट के उत्पादन के इष्टतम पैमाने पर उन्हे काटता है।

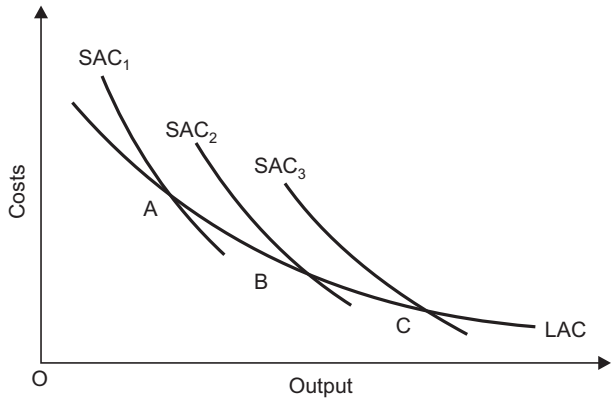

चित्र 2.34

तकनीकी उन्नति (Technical Progress)

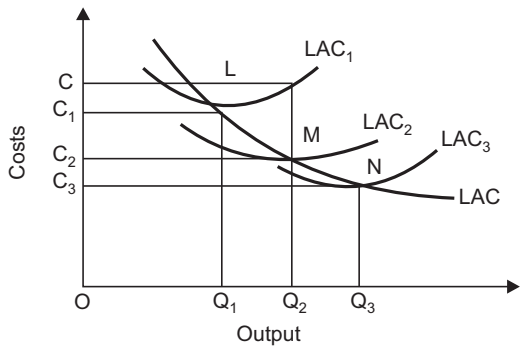

चित्र 2.35

नोट

लागतों के आधुनिक सिद्धांत में LAC वक्र की L- आकृति होने का एक अन्य कारण तकनीकी उन्नति है। लागतों का परंपरागत सिद्धांत तकनीकी उन्नति की मान्यता को नहीं लेता है, जब वह U- आकृति के LAC वक्र की व्याख्या करता है। परन्तु दीर्धकालीन लागतों से संबंधित आनुभविक परिणाम फर्मों में तकनीकी उन्नति के कारण पैमाने की विस्तृत मितव्ययिताओं के होने की पुष्टि करते हैं जिस समय अवधि के बीच तकनीकी उन्नति हुई हैं, दीर्धकालीन औसत लागतों की गिरने की प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। अमितव्ययिताओं के बारे में प्रमाण बहुत कम निश्चित हैं। इसलिए पैमाने के अन्तिम छोर पर ऊपर की ओर LAC का मोड़ नही देखा गया हैं। तकनीकी उन्नति के कारण LAC वक्र की L-आकृति को चित्र (Fig. 2.35 देखें) में समझाया गया है।

मान लीजिए कि फर्म LAC_1 वक्र पर प्रति इकाई OC_1 लागत से OQ_1 उत्पादन करती है। यदि फर्म की वस्तु की माँग बिन तकनीकी परिवर्तन के बढकर OQ_2 हो जाती है, तो फर्म प्रति इकाई OC लागत पर LAC_1 वक्र के साथ OQ_2 उत्पादन करेगी। यदि फर्म में तकनीकी उन्नति होती है, तो वह दीर्धकालीन औसत लागत वक्र LAC_2 नया प्लांट लगाएगी। इस प्लांट पर वह कम प्रति इकाई लागत OC_2 पर OQ_2 उत्पादन करती है। इसी प्रकार, यदि फर्म अपनी वस्तु की माँग में और वृद्धि को पूरा करने के लिए अपने उत्पादन को OC_3 तक बढ़ाने का निर्णय लेती है तो तकनीकी उन्नति इतने उन्नत स्तर तक पहुँच चुकी है कि वह LAC_3 वक्र वाला प्लांट लगाती है। अब यह और भी कम प्रति इकाई लागत OC_3 पर OQ_3 उत्पादन करती है। यदि इन दीर्धकालीन U- आकृति के औसत लागत वक्रों LAC_1, LAC_2 और L, M और N बिन्दुओं को रेखा द्वारा जोड़ा जाए, तो इससे एक नीचे की ओर धीरे से ढालू L-आकृति का LAC वक्र बनता है।

जानकारी (Learning)

L-आकृति वाले दीर्धकालीन औसत लागत वक्र का एक और कारण जानकारी प्रकिया है। जानकारी अनुभव से प्राप्त होती है। यदि इस संदर्भ में अनुभव को उत्पादित वस्तु की मात्रा माना जा सकता है, तो जितना अधिक उत्पादन होगा, प्रति इकाई लागत उतनी ही कम होगी। जानकारी के परिणाम बढ़ते हुए प्रतिफल की तरह हैं। पहला, बड़े स्तर पर किए गए कार्य से प्राप्त जानकारी को भुलाया नहीं जा सकता। दूसरा, जानकारी होने से उत्पादकता की दर बढ़ जाती हैं। तीसरा, अनुभव को उत्पादित किए गए कुल उत्पादन द्वारा तब से आंका जाता है जबसे फर्म ने शुरू में उत्पादन प्रारम्भ किया था। जब फर्में नई वस्तुएँ उत्पादित करना शुरू करती हैं, तो करने से जानकारी देखी गई है। जब वे पहली इकाई उत्पादित कर लेती हैं, तो उत्पादन के लिए जितना समय चाहिए उसे कम कर लेती हैं, और इस प्रकार वे प्रति इकाई लागतें कम लगती हैं।

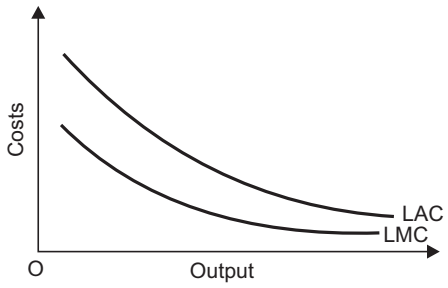

चित्र 2.36

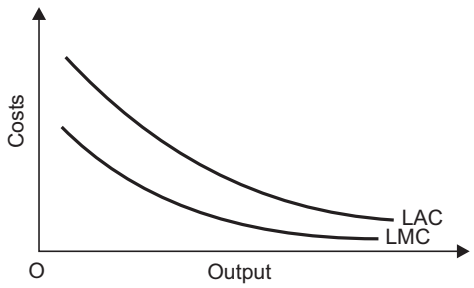

चित्र 2.37

उदाहरणार्थ, यदि फर्म जहाज के ढाँचे बनाती है, तो दीर्धकालीन लागतों में देखी गई गिरावट एक विशेष प्रकार के जहाज के ढाँचे का उत्पादन करने के अनुभव के कारण होती है न कि सामान्य जहाज के ढाँचों में। इसलिए व्यक्ति 'एक जानकारी वक्र' बना सकता है जो कि फर्म द्वारा हवाई जहाज के ढाँचे बनाने से लेकर अभी तक बनाए गए कुल हवाई जहाज के ढांचों की तुलना में प्रति ढांचे की लागत से सम्बन्धित है। चित्र एक जानकारी वक्र LAC दर्शाता है जो एक दिए हुए उत्पादन की लागत को समस्त समय अवधि के ऊपर कुल उत्पादन से संबंधित करता है। वस्तु बनाने के साथ बढ़ रहे अनुभव से लागतें गिरती जाती हैं जबकि इसकी अधिक से अधिक मात्रा उत्पादित की जाती है। जब

फार्म जानकारी की सभी संभावनाओं का उपयोग कर लेती है, तो लागतें न्यूनतम स्तर, M पर पहुँच जाती हैं, जैसा कि चित्र (चित्र 2.38) में दिखाया गया है। इस प्रकार करने से जानकारी के कारण LAC वक्र L-आकृति का होता है। LAC और LMC वक्रों में संबंध।

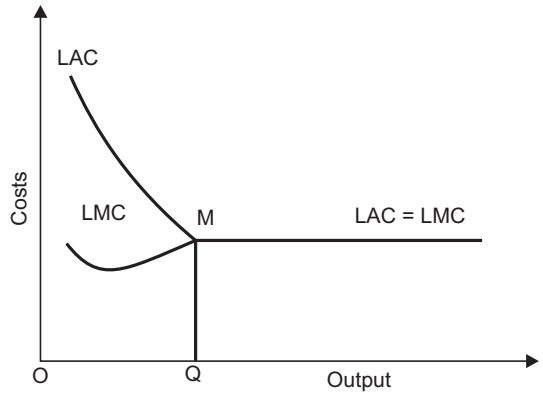

चित्र 2.38

आधुनिक लागत-सिद्धांत में, यदि LAC वक्र उत्पादन के बहुत बड़े पैमानों पर भी निर्विध्न और लगातार गिरता है, तो LAC वक्र की समस्त लंबाई के नीचे LMC वक्र स्थित होगा, जैसा कि में दिखाया गया है।

यदि प्लांट के एक न्यूनतम इष्टतम पैमाने या प्लांट के एक न्यूनतम दक्ष पैमाने के बिन्दु तक, जिसके बाद पैमाने की और किफायतें नही पाई जाती हैं, तो LACt वक्र X- अक्ष के समांनातर हो जाता है। इस स्थिति में LAC वक्र से नीचे LMC वक्र स्थित होता है जब तक न्यूनतम दक्ष पैमाने का बिन्दु, M नहीं पहुँच जाता है और इस बिन्दु के बाद LAC वक्र मिल जाता है, जैसा कि चित्र (Fig. 2.38 देखें) में दर्शाया गया है।

निष्कर्ष

अधिकतर आनुभाविक लागत अध्ययन ये सुझाव देतें हैं कि परंपरागत सिद्धांत द्वारा उपकल्पित U- आकृति के लागत वक्र वास्तविकता में नहीं देखे जाते हैं। इन अध्ययनों से दो मुख्य परिणाम निकलते हैं। प्रथम, SAVC और SMC वक्र उत्पादन के विस्तृत रेंज पर स्थिर हैं। द्वितीय, उत्पादन के नीचें स्तरों पर LAC वक्र तीव्रता से गिरता है और जब उत्पादन का पैमाना बढ़ता है तो बाद में व्यवहारिकता में स्थिर रहता है इसका मतलब है कि LAC वक्र U- आकृति का न होकर, L- आकृति का है। बहुत कम अवस्थाओं में पैमाने की अमितव्ययिताएँ पाई गई और वे भी उत्पादन के बहुत ऊँचे स्तरों पर।

2.11 लागतों की लोच (Elasticity of Costs)

यदि उत्पादन Q कुल लागत T द्वारा उत्पादित होता है जो लागत फलन होता है: $T = f(Q)$ कुल लागत की लोच कुल लागत में आनुपातिक परिवर्तन तथा उत्पादन में आनुपातिक परिवर्तन का अनुपात होता है।

इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$k = \frac{dT}{T} \div \frac{dQ}{Q} = \frac{dT}{T} \times \frac{Q}{dQ} = \frac{dT}{dQ} \cdot \frac{Q}{T} = \frac{dT}{dQ} \div \frac{T}{Q} = \frac{MC}{AC}$$

अत: लागत-लोच (k) सीमांत लागत (dt/dQ) का औसत लागत (T/Q) के साथ अनुपात के बराबर होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि $MC > AC$ तो $K > 1$ या $MC < AC$ तो $K < 1$ चित्र में, जब MC वक्र AC वक्र से ऊपर होता है तो $k > 1$. जैसा कि चित्र में बिन्दु E के दाई ओर का क्षेत्र है। यह ह्रासमान प्रतिफल व्यक्त करता है। जब $MC = AC$ तो $k = 1$. चित्र में यह स्थिति बिन्दु E जहाँ MC वक्र AC वक्र को नीचे से काटता

नोट

है। यह स्थिर प्रतिफल की अवस्था है। जब $MC < AC$ तो $k < 1$ यह चित्र में E बिन्दु के बाई ओर का क्षेत्र है, जहाँ MC वक्र गिर रहा है और AC वक्र से नीचे है। यह बढ़ते प्रतिफल की अवस्था है। क्योंकि औसत लागत एवं सीमांत लागत उत्पादन से संबद्ध कुल लागत से व्युत्पन्न की जाती हैं, AC वक्र तथा MC वक्र के आकार कुल लागत वक्र आकार से भी जाने जा सकते हैं।

चित्र आगे यह भी बताता है कि कुल लागत की लोच उत्पादन की वृद्धि के साथ निरन्तर इकाई से कम से लेकर इकाई से अधिक तक बढती जाती है। पहले, थोड़े उत्पादनों के लिए लागत-लोच इकाई से कम होती है और अन्त में, बड़े उत्पादनों के लिए यह इकाई से अधिक होती है। दूसरों शब्दों में, यदि उत्पादन का एक निश्चित स्तर मान लो α लिया जाए तो उत्पादन $Q < \alpha$ के लिए $k < 1$, और उत्पादन $Q > \alpha$ के लिए $k > 1$, जब $Q = \alpha$ हो तो $k = 1$ होता है। यह चित्र (Fig. 39 देखें) में दर्शाया गया है।

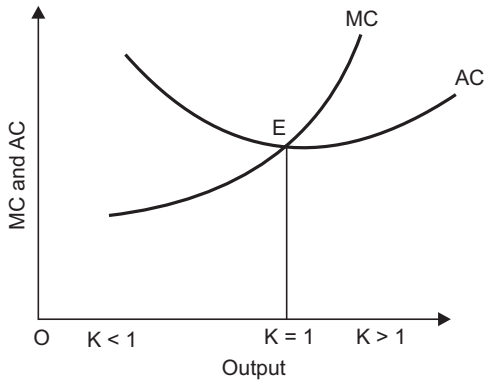

चित्र 2.39

औसत लागत की लोच (Elasticity of Average Cost)–कुल लागत की लोच k है:

$E(T) = \frac{dT}{dQ} \cdot \frac{Q}{T}$, और लागत है T/Q. इसलिए, T को T/Q से स्थानापन्न करके

$$E(T/Q) = \frac{d(T/Q)}{dQ} \cdot \frac{Q}{T/Q}$$

$$= \frac{d}{dQ}(T/Q) \cdot \frac{Q^2}{T}$$

$$= \frac{Q^2}{T}\left(\frac{Q\frac{dT}{dQ} - T}{Q^2}\right)$$

$$= \frac{Q^2}{T} \cdot \frac{1}{Q^2}\left(Q\frac{dT}{dQ} - T\right)$$

$$= \frac{Q^2}{T} \cdot \frac{dT}{dQ} - 1 = k - 1$$

इससे ये निष्कर्ष निकलते है: (1) यदि k (कुल लागत की लोच) इकाई से अधिक, बराबर या कम हो तो औसत लागत की लोच शून्य से अधिक, बराबर या कम होती है। (2) कुल लागत की लोच औसत लागत की लोच से इकाई से अधिक होती है, अर्थात् $E(T/Q) = k - 1$ or $k - E(T/Q) = 1$.

सीमांत लागत की लोच (Elasticity of Marginal Cost)–जैसाकि हम जानते हैं, कुल लागत की लोच है: $E(T) = dT/dQ \cdot Q/T$ इसलिए, सीमांत लागत है $dT/dQ \cdot T$ को dT/dQ से स्थानापन्न करके

$$E\left(\frac{dT}{dQ}\right) = d\frac{(dT/dQ)}{dQ} \cdot \frac{Q}{(dT/dQ)}$$

$$= \frac{d}{dQ}(dT/dQ) \cdot \frac{Q}{(dT/dQ)}$$

क्योंकि 1 निम्न द्वारा दिया है,

$$K = Q/T.\ dT/dQ \text{ or } Tk/2 = dT/dQ$$

(2) का मूल्य (1) में स्थापनापन्न करने से, हमें प्राप्त होता है,

$$E\left(\frac{dT}{dQ}\right) = \frac{d}{dQ}\left(\frac{dT}{dQ}\right) \cdot \frac{Q^2}{T_k}$$

2.12 सारांश (Summary)

- उत्पादन प्रकार्य आगतों (Input) एवं निर्गतों (Output) की मात्राओं के फलनात्मक संबंध को व्यक्त करता है। यह बताता है कि समय की एक निश्चित अवधि में आगतों के परिवर्तन से निर्गतों में किस प्रकार और कितनी मात्रा में परिवर्तन होता है।
- सैम्युलसन के अनुसार-"उत्पादन फलन वह प्राविधिक संबंध है जो यह बताता है कि पड़तों या आगतों के प्रत्येक विशेष समूह द्वारा कितना उत्पादन किया जा सकता है। यह किसी दी हुई प्राविधिक ज्ञान की स्थिति के लिये परिभाषित या संबंधित होता है।"
- समोत्पाद वक्र एवं उदासीनता वक्र में अद्‌भुत समानता पाई जाती है। समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन सभी संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे प्रदा उत्पन्न होती है। ठीक उसी प्रकार उदासीनता वक्र दो वस्तुओं के उन सभी संयोगों को व्यक्त करता है जिनमें उपभोक्ता को एक समान-स्तरीय सन्तुष्टि प्राप्त होती है।
- साधन स्थानापन्नता या तकनीकी स्थानापन्नता की लोच दो साधन के बीच स्थानापन्न की कोटि को मापती है। इस सिद्धान्त के निर्माता जे. आर. हिक्स ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है: "यह उस स्थिति का माप है जिनमें साधनों के स्थान पर एक परिवर्तशील साधन को स्थानापन्न किया जा सकता है।"
- फर्म की लागत उसकी पूर्ति को निर्धारित करती है पूर्ति और माँग द्वारा कीमत निर्धारित होती है। कीमत निर्धारण की प्रक्रिया और पूर्ति शक्तियों को समझने के लिए हमें लागत की प्रकृति को समझना होगा।
- फर्म के अल्पकालीन विश्लेषण में, कुल लागतों से औसत लागतें अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उत्पादन की जो इकाइयाँ फर्म उत्पादित करती है वे उसे समान लागत की मात्रा पर प्राप्त नहीं होती हैं। परन्तु उन्हें समान कीमत पर बेचना पड़ता हे। इसलिए फर्म को प्रति इकाई लागत या औसत लागत का जानना बहुत जरुरी है। फर्म की अल्पकालीन औसत लागतों में औसत स्थिर लागतें, औसत परिवर्तनशील लागतें और औसत कुल लागतें शामिल होती हैं।

2.13 मूल्यांकन प्रश्न

1. उत्पत्ति ह्रास नियम की व्याख्या कीजिये।
2. लागत के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम से आप क्या समझते हैं?
4. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की मान्यताएँ क्या हैं?

नोट

5. औसत तथा सीमान्त लागतों के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिये।
6. 'सम-विच्छेद विश्लेषण' का क्या अभिप्राय है? इसकी मान्यताओं एवं सीमाओं का वर्णन कीजिये।
7. औसत स्थिर लागत वक्र, औसत परिवर्तनशी लागत वक्र तथा सीमान्त लागत वक्र के रूप का स्पटीकरण कीजिए।
8. समोत्पाद वक्र की विशेषता का वर्णन कीजिए।

2.14 सन्दर्भ पुस्तकें

- प्रेम आहूजा एवं एच. एल. आहूजा: उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त; एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली (हिन्दी एवं अंग्रेजी)।
- प्रो. वी. सी. सिन्हा; **व्यष्टि अर्थशास्त्र,** प्रयाग पुस्तक भवन; इलाहाबाद।
- एस. एन. लाल एवं एस. के. लाल; **अर्थशास्त्र के सिद्धान्त;** शिव पब्लिशिंग हाउस; इलाहाबाद।
- बी. पी. त्यागी; व्यष्टि अर्थशास्त्र; राज पब्लिशिंग हाउस; जयपुर।
- M.L. Jhingan; Microeconomic theory; Vrinds Publication (P) Ltd. Delhi; (Hindi & English).
- अमिताभ तिवारी एवं बद्री विशाल त्रिपाठी; **अर्थशास्त्र के सिद्धान्त;** किताब महल, इलाहाबाद।

इकाई–3

बाजार की संरचना एवं कौशल सिद्धांत

संरचना (Structure)

3.1 उद्देश्य (Objectives)

3.2 प्रस्तावना (Introduction)

3.3 बाजार का अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition of Market)

– बाजार के तत्व (Essentials of Market)

– बाजार के प्रकार या रुप (Types of Market or Forms)

3.4 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार (Perfect Competition Market)

– पूर्ण प्रतियोगिता का आशय एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Perfect Competition)

– पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य एवं मात्रा का निर्धारण

3.5 एकाधिकार (Monopoly)

– एकाधिकार की विशेषताएं (Characteristics of Monopoly)

– एकाधिकार में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण की विधियां (Methods of Determination of Price and Output Under Monopoly)

– एकाधिकार में अल्पकालीन सन्तुलन (Short Period Equilibrium of Monopoly)

– एकाधिकार का दीर्घकाल साम्य (Long Period Equilibrium of a Monopolist)

3.6 मूल्य विभेद (Price Discrimination)

3.7 अपूर्ण व एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Imperfect and Monopolistic Competition)

– द्वयाधिकार प्रतियोगिता (Duopoly Competition)

3.8 अल्पाधिकार (Oligopoly)

– अल्पाधिकार की विशेषताएँ (Characteristics of Oligopoly)

- सारांश
- मूल्यांकन प्रश्न
- सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे :

- बाजार के विभिन्न प्रकारों का अर्थ एवं परिभाषा समझने हेतु।
- बाजार संतुलन अधिमाँग अधिपूर्ति का वर्णन करने हेतु।
- विभिन्न पूर्ण प्रतिस्पर्धारहित बाजार के विश्लेषण की जानकारी हेतु।

3.2 प्रस्तावना (Introduction)

नोट

पूर्व अध्याय में हमने फर्म के उत्पादन फलन तथा लागत वक्रों से संबंधित संकल्पनाओं का अध्ययन किया है। इस अध्याय का केंद्र-बिंदु भिन्न है। यहाँ प्रश्न उठता है कि कोई भी फर्म किस प्रकार यह निर्णय लेती है कि कितना उत्पादन करना है? इस प्रश्न के लिए हमारा उत्तर किसी भी रूप में सरल या अविवादित नहीं है। उत्तर फर्म के व्यवहार की एक निर्णायक अपितु कुछ हद तक अनुचित मान्यता पर आधरित है। हमारे अनुसार फर्म कठोर रूप से लाभ अधिकतमकर्ता होती है। अत: फर्म जिस मात्रा का उत्पादन तथा बाजार में उसका विक्रय करती हैं, वह उसके लाभ को अधिकतम करती है। इस अध्याय में, बाजार, बाजार के विभिन्न प्रकारों एवं बाजार संतुलन का अध्ययन करेंगे।

3.3 बाजार का अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition of Market)

सामान्य रूप से बाजार का अर्थ उस स्थान (क्षेत्र) से होता है, जहाँ पर क्रेता और विक्रेता अपनी-अपनी वस्तुओं का क्रय विक्रय करते हैं। परन्तु बाजार संरचना से आशय विभिन्न बाजार स्थितियों से लगाया जाता है जिसके अन्तर्गत विभिन उत्पादक फर्में या उद्योग उत्पादन विक्रय करते है। किसी भी वस्तु का कितना उत्पादन किया जाये और उसका कितना मूल्य रखा जाये?

इन सब का निर्धारण उत्पादनकर्ता बाजार की संरचना से निर्धारित करता है। अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया जाता है। अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का अभिप्राय उस सम्पूर्ण क्षेत्र से है जहाँ वस्तु-विशेष के क्रेता एवं विक्रेता आपस में प्रतिस्पर्धा करके उस क्षेत्र भर के लिए वस्तु की एक कीमत स्थापित कर देते हैं। बाजार में फर्मों अथवा विक्रेताओं के द्वारा क्रेताओं को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है तथा प्रत्येक फर्म अथवा विक्रेता अपनी वस्तु को अधिक से अधिक मात्रा में बेचने का प्रयास करता है। अत: बाजार से आशय किसी स्थान विशेष से न होकर उस सम्पूर्ण क्षेत्र से होता है जहाँ पर वस्तु के अनेक क्रेता एवं विक्रेता होते हैं।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने बाजार की परिभाषा इस प्रकार दी हैं –

1. **ऐली (Ely) –** "बाजार का अर्थ हम उस साधारण क्षेत्र से लगाते हैं। जिसके भीतर किसी वस्तु विशेष की कीमतों का निर्धारण करने वाली शक्तियाँ कार्यशील हैं।"
2. **जेबन्स (Jevons) –** "बाजार शब्द से तात्पर्य व्यक्तियों के किसी समूह से है जिसमें व्यापारिक सम्बन्ध होते हैं और जो किसी वस्तु में मिश्रित व्यवसाय करते हैं।"
3. **चेपमैन (Chapman) –** "बाजार शब्द से आशय किसी स्थान-विशेष से नहीं वरन् वह सदा वस्तु या वस्तुओं तथा उनके क्रेताओं और विक्रेताओं की ओर संकेत करता है जो कि प्रत्यक्ष रूप से प्रतियोगिता करते है।"
4. **केनरक्रास –** "बाजार का अर्थ क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच वस्तु या साधन के लेन-देन का जाल सूत्र (a network of dealings) है।"

उपरोक्त परिभाषाओं को देखने से पता चलता है कि विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने बाजार की भिन्न-भिन्न विशेषताओं का उल्लेख किया है जैसे क्षेत्र, एक कीमत, क्रेता-विक्रेताओं की संख्या आदि। अत: परिभाषाओं के इस मतभेद को देखते हुए अर्थशास्त्रियों ने बाजार के कुछ आवश्यक तत्वों का उल्लेख किया हैं।

बाजार के तत्व (Essentials of Market)

क्षेत्र – अर्थशास्त्र में बाजार शब्द से आशय किसी स्थान विशेष से नहीं है बल्कि बाजार का बोध उस समस्त, क्षेत्र से होता है। जिसमें बेचने वाले फैले होते हैं और वे आपस में स्वतंत्रतापूर्वक प्रतियोगिता करते हैं। जहाँ तक किसी वस्तु के खरीदने और बेचने वाले फैले होते हैं वह सारा स्थान 'क्षेत्र' कहलाता है। इस क्षेत्र में एक-दो गाँव या शहर या कोई राष्ट्र भी शामिल हो सकते हैं। इलाहाबाद में बैठा हुआ एक व्यापारी कपड़े का क्रय-विक्रय कानपुर, मुम्बई,

अहमदाबाद, दिल्ली, कर्नाटक में ही नहीं बल्कि सिंगापुर, न्यूयार्क या लंदन से भी कर सकता है। इस प्रकार कपड़े का बाजार इन क्षेत्रों के ग्राहकों को सम्मिलित करता है।

नोट

एक वस्तु – अर्थशास्त्र में बाज़ार एक ही वस्तु का माना जाता है। व्यवहार में हम एक ही स्थान पर एक से अधिक वस्तुएँ खरीद सकते हैं जैसे घी, फल, कपड़ा, मिठाई इत्यादि। परन्तु अर्थशास्त्र में प्रत्येक वस्तु का बाज़ार पृथक्-पृथक् माना जाता है, जैसे घी का बाज़ार, फल का बाज़ार, सब्जी बाज़ार, इलेक्ट्रोनिक बाजार और कपड़ा बाज़ार इत्यादि। संक्षेप में जितनी ही वस्तुएँ होती है, अर्थशास्त्र में इनके उतने ही बाज़ार माने जाते है।,

क्रेता-विक्रेता – क्रेता एवं विक्रेता दोनों ही बाजार के महत्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग हैं अत: क्रेता एवं विक्रेता के अभाव में बाजार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। किन्तु बाजार में क्रेता एवं विक्रेता की कोई निश्चित संख्या नहीं होती। इनकी संख्या कम भी हो सकती है और अधिक भी।

स्वतंत्र प्रतियोगिता – बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं में स्वतंत्र रूप से प्रतियोगिता होनी चाहिये। स्वतंत्र प्रतियोगिता का यह अर्थ है कि क्रेताओं पर सौदे करते समय किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।

एक कीमत – जब बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं में स्वतंत्र प्रतियोगिता होगी तो इसका परिणाम यह होगा कि वस्तु की कीमत एक समय में एक ही होगी। यदि किसी वस्तु की कीमत भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है तब माँग एवं पूर्ति की शक्तियों की क्रियाशीलता के कारण उनमें समानता होने की प्रवृत्ति होती है।

बाजार की उपर्युक्त अनेक परिभाषाओं एवं विशेषताओं के आधार पर इसकी परिभाषा इस तरह से दी जा सकती है। बाजार का तात्पर्य यह है कि किसी स्थान से नहीं वरन् उस समस्त क्षेत्र से होती है। जहाँ किसी वस्तु के क्रेता और विक्रेता फैले होते हैं, जिनमें स्वतंत्र प्रतियोगिता होती है, जिसके परिणामस्वरूप उस वस्तु का मूल्य सर्वत्र एक ही होता है।

बाजार के प्रकार या रूप (Types of Market or Forms)

बाजार को विभिन्न आधारों पर कई भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें से प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं–

1. **प्रतियोगिता के आधार पर (On the Basis of Competition)**
   - (*i*) पूर्ण प्रतियोगी बाजार (Perfect competitive market)
   - (*ii*) एकाधिकार (Monopoly)
   - (*iii*) अपूर्ण प्रतियोगी बाजार (Imperfect Comperitive Market)
     - (अ) एकाधिकृत प्रतियोगी बाजार (Monopolistic Competitive Market)
     - (ब) द्वयाधिकार (Duopoly)
     - (स) अल्पाधिकार (Oligopoly)
2. **समय के आधार पर (On the Basis of Time)**
   - (*i*) अति अल्पकालीन बाजार (Very Short Period Market)
   - (*ii*) अल्पकालीन बाजार (Short Period Market)
   - (*iii*) दीर्घकालीन बाजार (Long Period Market)
   - (*iv*) अति दीर्घकालीन बाजार (Very Long Period Market)
3. **स्थान के आधार पर (On the Basis of Area)**
   - (*i*) स्थानीय बाजार (Local Market)
   - (*ii*) प्रांतीय बाजार (Regional Market)
   - (*iii*) राष्ट्रीय बाजार (National Market)
   - (*iv*) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार (International Market)

3.4 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार (Perfect Competition Market)

नोट

एक फर्म के लाभ अधिकतमीकरण की समस्या का विश्लेषण करने के क्रम में हमें सबसे पहले बाजार का वातावरण, जिसमें फर्म कार्य करती है, को स्पष्ट करना पड़ता है। इस अध्याय में हम एक ऐसे बाजार वातावरण का अध्ययन करेंगे जिसे पूर्ण प्रतिस्पर्धा कहा जाता है। एक पूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में दो पारिभाषिक लक्षण होते हैं:

1. बाजार खरीदारों तथा विक्रेताओं (अर्थात्, फर्मों) से बनता है। बाजार में सभी फर्में एक विशिष्ट एकरूपात्मक (अर्थात् विभेदात्मक) वस्तु का उत्पादन करती है।
2. बाजार में प्रत्येक खरीदार और विक्रेता कीमत-स्वीकारक है।

क्योंकि एक पूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक बाजार का प्रथम लक्षण समझने में आसान है, हम द्वितीय लक्षण पर ध्यान देते हैं। एक फर्म की दृष्टि से, कीमत-स्वीकारक से क्या अभिप्राय है? एक कीमत-स्वीकारक फर्म को विश्वास है कि यदि वह बाजार कीमत से उपर एक कीमत निर्धारित करती है, तो यह जिस मात्रा का उत्पादन करती है, उसे बेचने में असमर्थ होगी। दूसरी ओर, यदि निर्धारित कीमत, बाजार कीमत के समान अथवा उसकी तुलना में कम हो, तो फर्म जितनी इकाइयाँ विक्रय करने को इच्छुक है, उतना विक्रय कर सकती है। एक खरीदार के दृष्टिकोण से, वह किस कीमत को स्वीकार करता है? खरीदार निश्चित रूप से सर्वाधिक सम्भावित न्यूनतम कीमत पर वस्तु खरीदना चाहता है।

तथापि, एक कीमत-स्वीकारक खरीदार को यह विश्वास होता है कि यदि उसने बाजार कीमत से कम कीमत की माँग की, तो कोई भी फर्म उसे उस वस्तु का विक्रय करने की इच्छुक नहीं होगी। दूसरी ओर, यदि माँगी गई कीमत बाजार कीमत के समान अथवा उससे अधिक है, तो खरीदार इच्छित मात्रा में वस्तु की बहुत-सी इकाइयाँ प्राप्त कर सकता है।

चूँकि यह अध्याय केवल फर्मों से ही संबंध रखता है, हम खरीदार के व्यवहार के विषय में अधिक चर्चा नहीं करेंगे। इसके बावजूद, हम उन स्थितियों की पहचान करेंगे जिनके अंतर्गत कीमत-स्वीकारक फर्मों के लिए एक सार्थक पूर्वधारणा है। कीमत-स्वीकारक ऐसी स्थिति में अक्सर एक सार्थक पूर्वधारक के रूप में जाना जाता है, जब बाजार में अनेक फर्में तथा खरीदार होते हैं जिन्हें बाजार में प्रचलित कीमत की पूर्ण जानकारी है। क्यों? आइए, आरंभ करते हैं एक ऐसी स्थिति से, जहाँ बाजार में प्रत्येक फर्म समान (बाजार) कीमत लेती है तथा वस्तु की कुछ मात्रा का विक्रय करती है। अब मान लीजिए कि एक विशेष फर्म अपनी कीमत को बाजार कीमत की तुलना में बढ़ा देती है।

ध्यान दीजिए, चूँकि सभी फर्में एक ही वस्तु का उत्पादन करती हैं तथा सभी खरीदार बाजार कीमत से पूर्णरूप से अवगत हैं, तो इस प्रश्न पर फर्म अपने ग्राहक खो देगी। इसके अलावा, जैसे-जैसे ये खरीदार अन्य फर्मों की ओर रुख करेंगे, कोई समायोजन संबंधी समस्या खड़ी नहीं होगी। उनकी माँगें तुरंत से पूरी हो जाती हैं, क्योंकि बाजार में अनेक फर्में होती हैं। याद कीजिए कि बाजार कीमत से अधिक कीमत पर वस्तु की किसी भी मात्रा का विक्रय करने के लिए एक व्यक्तिगत फर्म की असमर्थता बिल्कुल वही है, जो एक कीमत-स्वीकारक की पूर्वधारणा है।

पूर्ण प्रतियोगिता का आशय एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है, जिसमें क्रेता और विक्रेता अधिक संख्या में होते हैं, उनमें पूर्ण एवं स्वतन्त्र प्रतियोगिता पाई जाती है और कोई भी क्रेता अथवा विक्रेता वस्तु विशेष की कीमत को अपने क्रय-विक्रय द्वारा प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता है।

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार – "पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उस समय पाई जाती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन की माँग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका अर्थ है: प्रथम, विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है जिससे किसी एक विक्रेता का उत्पादन उस वस्तु के कुल उत्पादन का एक बहुत ही थोड़ा भाग होता है, तथा दूसरे, सभी क्रेता प्रतियोगी विक्रेताओं के बीच चुनाव करने की दृष्टि से समान होते हैं, जिससे बाजार पूर्ण हो जाता है।

नोट

प्रो. फर्गुसन – "एक उद्योग पूर्ण प्रतियोगिता वाला तब होता है जब समस्त बाजार की तुलना में प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता इतना छोटा होता है कि वह अपनी खरीद अथवा उत्पादन में परिवर्तन करके बाजार कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता है।"

मार्शल के अनुसार – "बाजार जितना अधिक पूर्ण होगा उतना ही उसके सभी भागों में किसी एक वस्तु के लिए एक समय पर एक ही कीमत चुकाने की प्रवृत्ति पायी जायेगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है जिससे क्रेता और विक्रेता बड़ी संख्या में वस्तु का विनियम करते हैं उनको बाजार की अवस्था का पूर्ण ज्ञान होता है। तथा कीमत की प्रवृत्ति समस्त बाजार में एक समान होने की होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएँ या दशाएँ (Features or Conditions of Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं –

1. असंख्य क्रेता एवं विक्रेता (Large number of buyers and sellers)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विक्रेताओं के साथ-साथ क्रेताओं की संख्या भी बहुत ज्यादा होती है जिसके फलस्वरूप प्रत्येक क्रेता उद्योग के कुल उत्पादन का एक बहुत छोटा-सा भाग खरीदता है। अर्थात् वह अपनी सीमित खरीद (माँग) के कारण ही वस्तु की कीमत को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता है।

2. समरूप वस्तु का होना (Homogeneous Product)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ, रंग रूप, आकार तथा गुण में एक रूप होती हैं अर्थात् बाजार में किसी प्रकार का कोई वस्तु विभेद नहीं पाया जाता है।

3. फर्मों का प्रवेश तथा बहिर्गमन स्वतन्त्र (Free Entry and Exit of Firm)

इस बाजार में कोई भी नई फर्म उद्योग में प्रवेश कर सकती है तथा काम में लगी कोई भी फर्म उत्पादन बन्द कर उद्योग छोड़ सकती है।

जिस बाजार में ये उपरोक्त तीन शर्तें पाई जाती हैं उसे अर्थशास्त्री 'विशुद्ध प्रतियोगी बाजार' (Pure competition Market) कहते हैं। इस बाजार में एकाधिकारी तत्व पूर्णतया अनुपस्थित रहता है। किन्तु आजकल अर्थशास्त्र में विशुद्ध प्रतियोगिता के स्थान पर पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की धारणा का ही अधिक उपयोग किया जाता है।

4. क्रेताओं और विक्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान (Perfect Knowledge of Market Conditions)

क्रेताओं और विक्रेताओं को वस्तु की कीमत की पूरी-पूरी जानकारी होती है। क्रेताओं को इस बात का अपूर्ण ज्ञान होता है कि भिन्न-भिन्न विक्रेता वस्तु को किस कीमत पर बेंच रहें हैं और विक्रेताओं को यह ज्ञान होता है कि कहाँ और किस क्रेता से उन्हें अधिक कीमत प्राप्त हो सकती है।

5. विक्रय लागत का अभाव

पूर्ण प्रतियोगिता में विक्रेता विज्ञापन, प्रचार पर खर्च नहीं करता। सब फर्मों का उत्पादन एक समान होता हैं।

6. एक समान कीमत (Uniformity of Price)

सारे बाजार में उस वस्तु की एक ही कीमत प्रचलित रहती है। यदि कोई विक्रेता अधिक कीमत रखेगा तो उसकी मांग शून्य हो जायेगी।

7. कृत्रिम प्रतिबन्धों का अभाव (Lack of Artificial Restrictions)

इस बाजार में वस्तु के क्रेताओं पर सरकार या अन्य किसी भी संस्था की ओर से कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होता। हर बात का निर्णय बाजार की शक्तियों के आधार पर होता है।

नोट

8. साधनों की पूर्ण गतिशीलता (Perfect Mobility of Factors)

पूर्ण प्रतियोगिता की एक मुख्य विशेषता यह भी हैं कि इस प्रकार के बाजार में वस्तुओं एवं सेवाओं और साध नों की गतिशीलता पायी जाती है। उत्पादन के साधन अपने विभिन्न उद्योगों में से जहाँ-कहीं वे रोजगार चाहते हैं वहीं जाने को वे मुक्त होते है।

9. परिवहन लागतों का अभाव (Absence of Transportation Cost)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में वस्तु के यातायात की लागत का कीमत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि सभी उत्पादक फर्में एक दूसरे के अति निकट स्थित होती है और एक समान कीमत प्रचलित होती है। ऐसी दशा में वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जानें की कोई परिवहन लागत नहीं होती है।

10. क्षैतिज औसत आगम वक्र (Horizontal Average Revenue Curve)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में एक फर्म की औसत व सीमान्त आगम वक्र X-अक्ष के सामानान्तर होती है जो पूर्णतया लोचदार माँग को प्रकट करती है। इसे रेखाचित्र 1 में दर्शाया गया है।

इसका अर्थ है कि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में प्रत्येक फर्म कीमत ग्रहण करने वाली (Price taker) होती है, कीमत निर्धारण करने वाली (Price maker) नहीं।

11. दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ (Normal Profit in Long Period)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है। क्योंकि दीर्घकाल के अन्तर्गत माँग में परिवर्तन के अनुसार पूर्ति में भी परिवर्तन किया जा सकता है।

पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य एवं मात्रा का निर्धारण

सामान्य रूप से वस्तु के मूल्य निर्धारण में माँग एवं पूर्ति की भूमिका होती है। उसी प्रकार उद्योग द्वारा वस्तु की कीमत का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है, जहाँ पर वस्तु माँग तथा वस्तु की पूर्ति दोनों एक दूसरे को एक बिन्दु पर काटते हों। उसी बिन्दु पर वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है। फर्म मूल्य का निर्धारण नहीं करती अपितु उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य को ग्रहण करती है। तालिका 1 में उद्योग द्वारा कीमत व उत्पादन का निर्धारण एवं फर्म द्वारा स्वीकृत कीमत को चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

तालिका–1

उद्योग द्वारा कीमत व उत्पादन का निर्धारण

मूल्य (रु. में) (P)	वस्तु की माँग (D)	वस्तु की पूर्ति (S)
1	50	10
2	40	20
3	30	30 (D = S)
4	20	45
5	10	55
6	06	65

तालिका 1 से स्पष्ट है जब वस्तु का मूल्य 1 रुपये था तो मांग (50 इकाई) अधिक तथा पूर्ति (10 इकाई) कम थी। लेकिन मूल्य में वृद्धि होकर 3 रुपये हो गयी तब माँग (30 इकाई) तथा पूर्ति (30 इकाई) बराबर हो गयी। इसी बिन्दु पर वस्तु की कीमत निर्धारित होती है। कीमत फर्म को भी स्वीकृत होगी जिसे चित्र 3.1 से स्पष्ट किया जा सकता है। पूर्ण प्रतियोगिता में साम्य कीमत का निर्धारण किसी एक उत्पादक फर्म के द्वारा नहीं बल्कि सभी विक्रेताओं द्वारा होता है।

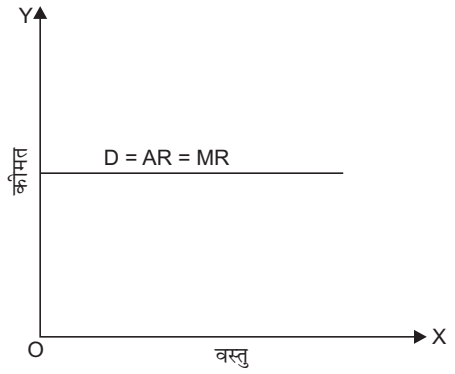

चित्र 3.1

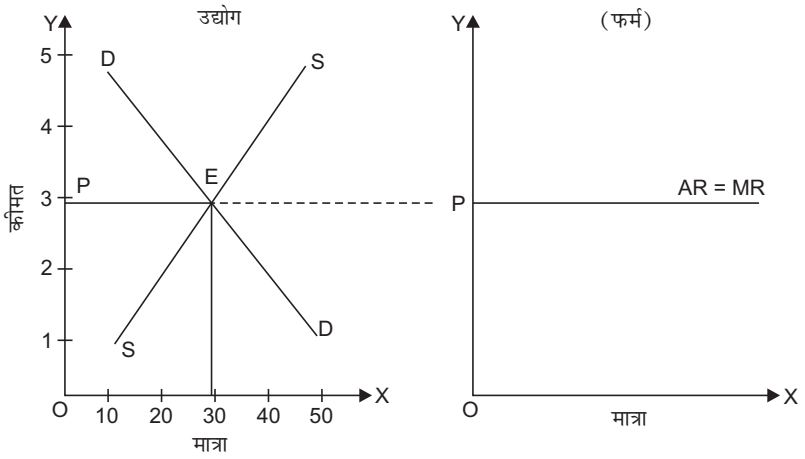

चित्र 3.2A

चित्र 3.2B

अर्थात उद्योग की माँग और पूर्ति अर्थात कुल पूर्ति द्वारा ही साम्य कीमत का निर्धारण होता है। (चित्र. 3.2) से स्पष्ट होता है। कि उद्योग द्वारा जो कीमत निर्धारित होती है वह फर्म द्वारा स्वीकृत कर ली जाती है। उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत पर ही फर्म उत्पादित वस्तु को विक्रय करती है। यह कीमत सभी फर्मों को स्वीकार होती है। (चित्र. 3.2A) से स्पष्ट है जब वस्तु की कीमत 3 रुपये होती है तब मांग व पूर्ति भी 30 इकाई होती है। जो मांग एवं पूर्ति को E बिन्दु पर काटती है, यही उद्योग की कीमत है। जिसे फर्म स्वीकार करती है। क्योंकि फर्म की औसत आय व सीमान्त आय अर्थात् AR = MR बराबर है। जिसे (चित्र. 3.2B) में दर्शाया गया है। अत: स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग के द्वारा वस्तु की माँग व पूर्ति के आधार पर कीमत का निर्धारण किया जाता है तथा फर्म इस कीमत को दिया हुआ स्वीकार कर लेती है।

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के सन्तुलन की रीतियाँ (Methods of Equilibrium of Firm Under Perfect Competition)

किसी फर्म के लिए अधिकतम लाभ प्राप्ति हेतु यह आवश्यक है कि फर्म सन्तुलन की अवस्था में हो। सामान्य रूप से कोई भी फर्म सन्तुलन में है या नहीं इसे मापने की दो रीतियाँ हैं–

1. कुल आगम (TR) व कुल लागत (TC) रीति।
2. सीमान्त आगम (MR) व सीमान्त लागत (MC) की रीति।

नोट

1. कुल आगम व कुल लागत रीति (TC and TR Method) –

इस विधि के अन्तर्गत कुल लागत तथा आगम के माध्यम से फर्म का सन्तुलन स्थापित किया जाता है। इस रीति से स्पष्ट है कि जब फर्म में कुल लागत व कुल आगम या आय के मध्य अन्तर सर्वाधिक होता है। तब फर्म सन्तुलन की अवस्था में होती है। इसे (चित्र 3.3) से स्पष्ट किया गया है।

(चित्र 3.3) में OX अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY अक्ष पर कुल लागत (TC) व कुल आगम (TR) को प्रदर्शित किया गया है। कुल लागत कभी शून्य नहीं हो सकती है, इसलिये इसका प्रारम्भ F बिन्दु से हुआ है। कुल लागत (TC) वक्र कुल आगम (TR) वक्र को A व C बिन्दु पर काटता है जिस पर फर्म को न लाभ और न हानि होती है। लेकिन B बिन्दु ऐसा है जिस पर TC व TR के मध्य अधिक अन्तर है इसलिये इसी बिन्दु पर फर्म उत्पादन करेगी और फर्म का सन्तुलन होगा। अन्य बिन्दु OM या OM_2 पर फर्म का सन्तुलन नहीं बनेगा। यदि फर्म OM_1 उत्पादन करती है। तो BT लाभ होगा जो अधिकतम है। अत: OM_1 उत्पादन स्तर पर फर्म सन्तुलन में होगी जहाँ पर उसके कुल लाभ अधिकतम हो जाते हैं।

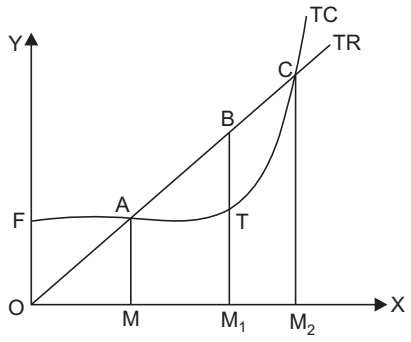

चित्र 3.3

2. सीमान्त आगम (MR) व सीमान्त लागत (MC) की रीति–

सीमान्त आगम व सीमान्त लागत की रीति के अनुसार फर्म तब सन्तुलन में होगी जब फर्म निम्न दो शर्तों को पूर्ण करती हो –

(*अ*) प्रथम शर्त, जब फर्म की सीमान्त लागत व सीमान्त आगम बराबर हो।

अर्थात् $MC = MR$

(*ब*) दूसरी शर्त, जब फर्म की सीमान्त लागत वक्र नीचे से सीमान्त आगम वक्र को काटे, तब फर्म का सन्तुलन होगा।

फर्म के सन्तुलन की स्थिति को (चित्र 3.4) से स्पष्ट किया जा सकता है –

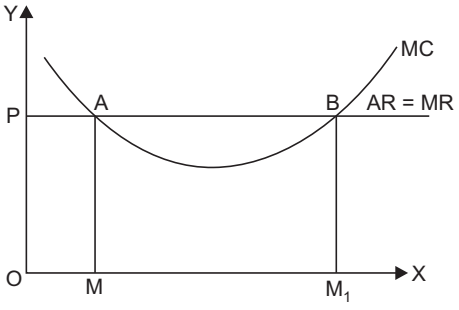

चित्र 3.4

(चित्र 3.4) में OX अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY अक्ष पर फर्म के सीमान्त लागत व सीमान्त आगम को प्रदर्शित किया गया है। फर्म की प्रथम शर्त A व B बिन्दु पर पूर्ण होती है। लेकिन B बिन्दु ही ऐसा है जिस पर फर्म की प्रथम व द्वितीय शर्तें पूर्ण होती है। इसी बिन्दु पर फर्म अपना उत्पादन OM से बढ़ाकर OM_1 पर करेगी। जिससे फर्म B बिन्दु पर साम्य और अधिकतम लाभ अर्जित कर सकेगी। अब यदि फर्म OM_1 उत्पादन के पश्चात् भी उत्पादन को जारी रखती है तो उसे हानि उठानी पड़ेगी क्योंकि उसकी सीमान्त लागत उसके सीमान्त आगत से अधिक हो जायेगी। अत: फर्म B बिन्दु पर सन्तुलन में होगी तथा अधिकतम लाभ अर्जित करेगी।

फर्म का अल्पकालीन सन्तुलन (Short Period Equilibrium of Firm)

अल्पकाल में फर्म के सन्तुलन में होने के लिये सीमान्त लागत एवं सीमान्त आगम का बराबर होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त समय पर भी निर्भर होता है कि फर्म को किस प्रकार का लाभ होगा। फर्म की अल्पकाल में हानि या लाभ की गणना औसत आय (AR) और औसत लागत (AC) के अन्तर द्वारा ज्ञात किया जाता है। अल्पकाल वह समय होता है जिसमें उत्पत्ति के सभी साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। जिसके कारण फर्म को निम्न अवस्थाओं का सामना करना पड़ता है-

(*i*) असामान्य लाभ (Abnormal Profit)

(*ii*) सामान्य लाभ (Normal Profit)

(*iii*) हानि (Loss)।

1. असामान्य लाभ (Abnormal Profit) –

अल्पकाल में किसी फर्म को उसी स्थिति में अतिरेक लाभ या असामान्य लाभ प्राप्त होता हैं जब उसकी औसत लागत वक्र औसत आगम वक्र के नीचे होती है। दूसरे शब्दों में जब उद्योग द्वारा निर्धारित वस्तु का मूल्य (जो फर्म का औसत आगम होता है) किसी फर्म की औसत उत्पादन लागत से अधिक होता है तो उस फर्म को अतिरेक लाभ प्राप्त होता है। किसी फर्म को असामान्य लाभ उस समय प्राप्त होता है जब फर्म के उत्पादन की प्रति इकाई कीमत (AR) उनकी प्रति इकाई औसत लागत (AC) से अधिक होती है। इस स्थिति को चित्र 3.5 द्वारा समझा जा सकता है।

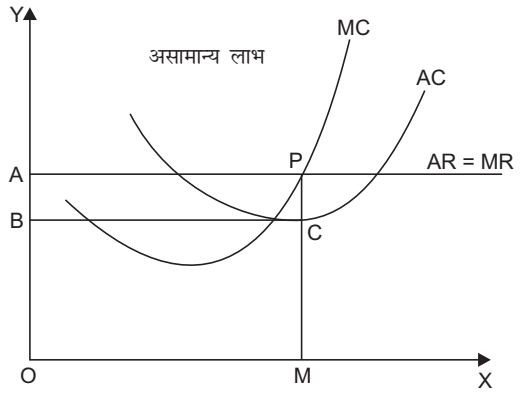

चित्र 3.5

(चित्र 3.5) में OX अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY अक्ष पर कीमत और लागत को दर्शाया गया है। फर्म का सन्तुलन बिन्दु P है जहाँ MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता हुआ ऊपर की ओर जा रहा है। AC वक्र AR से नीचे है जिससे स्पष्ट होता है कि फर्म ABCP लाभ हो रहा है। क्योंकि फर्म प्रति इकाई लाभ PC है और उत्पादन OM है इसलिये फर्म का असामान्य लाभ ABCP है।

2. सामान्य लाभ (Normal Profit) –

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म को सामान्य लाभ उस बिन्दु पर प्राप्त होता है जब फर्म की प्रति इकाई लागत (AC) और प्रति इकाई आय (AR) बराबर है। जिसे चित्र 3.6 में स्पष्ट किया गया है।

नोट

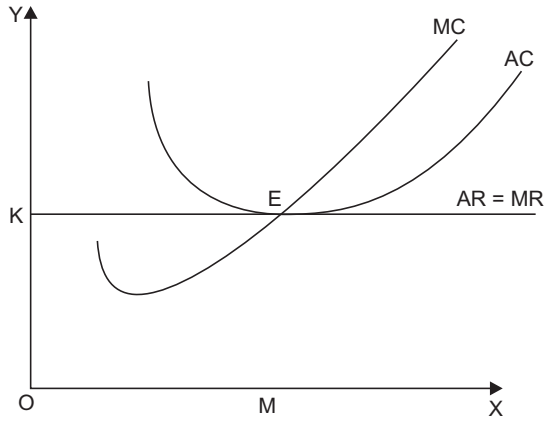

चित्र 3.6

फर्म का साम्य बिन्दु = E जहाँ MR = MC = ME

फर्म के उत्पादन की मात्रा = OM

फर्म की औसत लागत = ME

फर्म की औसत आगम = ME

E बिन्दु पर फर्म की AC और AR बराबर है, अर्थात औसत लागत और औसत आगम बराबर है। इसलिये फर्म को सामान्य लाभ होता है।

3. हानि (Loss) –

अल्पकाल में किसी फर्म को उस समय हानि होगी जिस समय औसत लागत (AC) औसत आगम (AR) की तुलना में अधिक होगा अर्थात् AC > AR हो। जिसे चित्र 7 से समझा जा सकता है।

फर्म का साम्य बिन्दु = E

फर्म का उत्पादन = OM

फर्म की प्रति इकाई कीमत = MC

फर्म की प्रति इकाई लागत = ME

फर्म को हानि = ME – MC = EC

फर्म की कुल हानि = ABCE

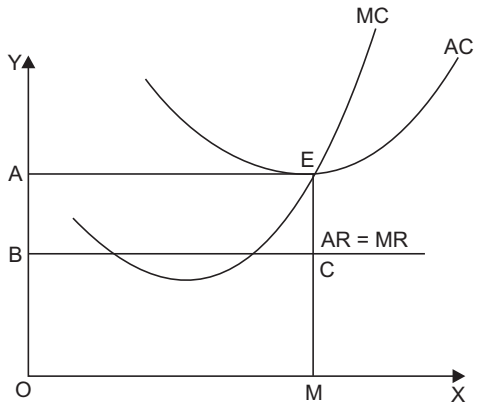

चित्र 3.7

फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन (Long Period Equilibrium of Firm)

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म को दीर्घकाल में सदैव सामान्य लाभ प्राप्त होता है। क्योंकि फर्म के पास अधिक समय होने के कारण फर्म सभी साधनों का प्रयोग कर लेता है। जबकि अल्पकाल में सभी साधनों का प्रयोग सम्भव नहीं हो पाता है। दीर्घकाल में औसत लागत (LAC) और औसत आगम (LAR) बराबर होता है।

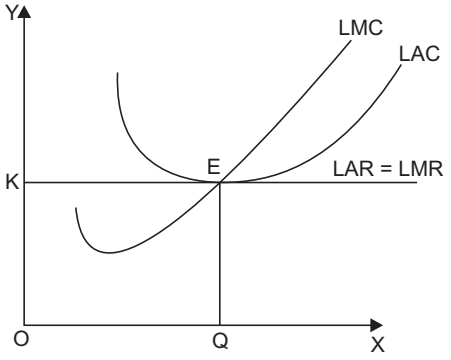

चित्र 3.8

(चित्र 3.8) में OX अक्ष पर उत्पादन और OY अक्ष पर लागत व आगम को दर्शाया गया है। QE साम्य उत्पादन के स्तर पर लागत और औसत आय दोनों ही OK के बराबर है दीर्घकाल में LAR = LMR = LAC = LMC की भाँति पूर्ण होनी चाहियें, जो E बिन्दु पर पूर्ण होती है। इसलिए फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

3.5 एकाधिकार (Monopoly)

एकाधिकार पूर्ण प्रतियोगिता के बिल्कुल विपरीत होता है। एकाधिकार शब्द का उद्गम दो ग्रीक शब्द 'MONOS' तथा 'POLUS' से हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ 'अकेला' (Single) और 'विक्रेता' (Seller) है। अत: एकाधिकार बाजार की वह अवस्था है, जिसमें वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है, तथा उस वस्तु की उत्पादन एवं पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। इसके अतिरिक्त उस वस्तु की कोई स्थानापन्न या प्रतिस्पर्धा नहीं होती है। एकाधिकार की दशा में बाजार में एक ही उत्पादक अथवा फर्म होती है इसलिये फर्म और उद्योग एक दूसरे के पर्यायवाची होते हैं।

चैम्बरलिन के अनुसार "एकाधिकार की स्थिति वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है।"

प्रो. बोल्डिंग के अनुसार – "शुद्ध एकाधिकारी फर्म वह फर्म है जो कि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापन्न नहीं हो।"

ए. पी. लर्नर के अनुसार – "एकाधिकारी का तात्पर्य उस विक्रेता से है जिसकी वस्तु की मांग वक्र गिरता हुआ होता है।"

के. ई. बोल्डिंग के अनुसार – "शुद्ध एकाधिकारी वह फर्म है जो कोई ऐसी वस्तु उत्पन्न कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापन्न नहीं होता है। प्रभावपूर्ण से आशय यहां यह है कि यद्यपि एकाधिकारी असामान्य लाभ कमा रहा है, तथापि अन्य फर्में ऐसी स्थानापन्न वस्तु उत्पन्न करके जो कि क्रेताओं को एकाधिकारी की वस्तु से दूर कर सके, उक्त लाभों पर अतिक्रमण करने की स्थिति में नहीं है।"

एकाधिकार की विशेषताएं (Characteristics of Monopoly)

एकाधिकार बाजार की निम्न विशेषताएँ होती हैं –

1. एकाधिकार बाजार प्रतियोगिता में केवल एक ही उत्पादक या विक्रेता होता है। अन्य उत्पादक एवं विक्रेताओं का अभाव पाया जाता है।

नोट

2. वस्तु की कीमत पर पूर्ण एकाधिकार विक्रेता का होता है। अर्थात कीमत का निर्धारण का अधिकार एकाधिकारी के हाथों में होता है।
3. नयी फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध होता है, जिससे एकाधिकार की स्थिति को बनाये रखा जा सकें।
4. एकाधिकार बाजार में उद्योग एवं फर्म एक ही होती है।
5. दीर्घकाल में एकाधिकारी को असामान्य लाभ प्राप्त होता है।
6. एकाधिकार की स्थिति में कीमत विभेदीकरण सम्भव होता है। जिसका मुख्य कारण अधिक लाभ कमाना है।
7. एकाधिकारी वस्तु का मूल्य निर्धारक होता है, क्योंकि वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।
8. एकाधिकारी बाजार में AR और MR — X अक्ष के समानान्तर नहीं होते हैं अपितु ऊपर से नीचे की ओर गिरते हैं। क्योंकि विभिन्न स्थानों पर वस्तुओं के मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं।

एकाधिकार में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण की विधियां (Methods of Determination of Price and Output Under Monopoly)

एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन व कीमत का निर्धारण निम्नलिखित दो विधियों के आधार पर किया जाता है –

1. **कुल आगम तथा कुल लागत विधि –** किसी एकाधिकारी फर्म का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है। यह उद्देश्य एकाधिकारी फर्म तभी प्राप्त कर सकती है जबकि यह अपनी कुल लागत व कुल आगम के मध्य अधिकतम अन्तर करने में समर्थ हो।
2. **सीमान्त आगम व सीमान्त लागत विधि –** इस विधि के अन्तर्गत एकाधिकारी का लाभ उस बिन्दु पर अधिकतम होता है जहाँ पर उसकी सीमान्त लागत तथा सीमान्त आगम दोनों एक समान होतें हों। वास्तव में यहां पर फर्म को अधिकतम और सामान्य लाभ हो सकता है। और न्यूनतम हानि भी हो सकती है।

एकाधिकार में अल्पकालीन सन्तुलन (Short Period Equilibrium of Monopoly)

पूर्ण प्रतियोगिता की भांति एकाधिकार में अल्पकाल एवं दीर्घकाल में वस्तुओं के मूल्य एवं उत्पादन विभिन्न होते हैं। मूल्य निर्धारण में समय तत्व का महत्व अधिक होता है। इसलिये अल्पकाल में किसी भी फर्म को आसामान्य लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि हो सकती है।

1. असामान्य लाभ (Abnormal Profit)

एकाधिकारी उत्पादन तथा कीमत वहाँ निर्धारित करेगा जहाँ पर सीमान्त आगम (MR) व सीमान्त लागत (MC) के बराबर हो। फर्म में असामान्य लाभ की स्थिति उस समय उत्पन्न उत्पन्न होती है। जब प्रति इकाई औसत लागत की तुलना में प्रति इकाई मूल्य अधिक होता है। अर्थात् AR > AC हो। जिसे (चित्र 3.9) में दर्शाया गया है।

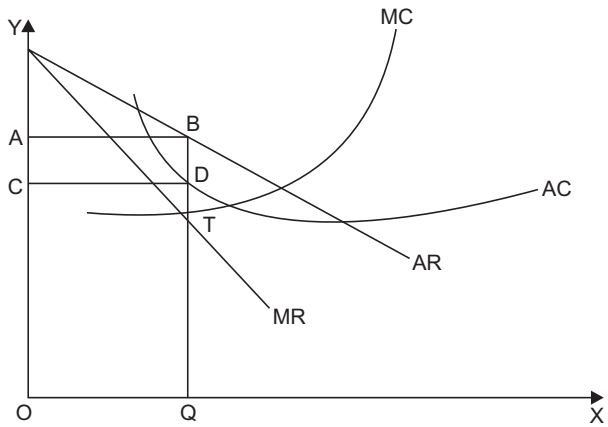

चित्र 3.9

(चित्र 3.9) OX अक्ष पर उत्पादन की मात्रा तथा OY अक्ष पर मूल्य तथा लागत को दर्शाता गया है। MC तथा AC सीमान्त लागत व औसत लागत और AR व MR औसत आगत व सीमान्त आगम है। T बिन्दु पर MC = MR है। फर्म की औसत लागत AC औसत आगम AR से कम है। जिसके कारण फर्म को BD लाभ हो रहा है। अत: फर्म OQ उत्पादन पर ABDC कुल लाभ प्राप्त होगा; जिसे असामान्य लाभ कहा गया है।

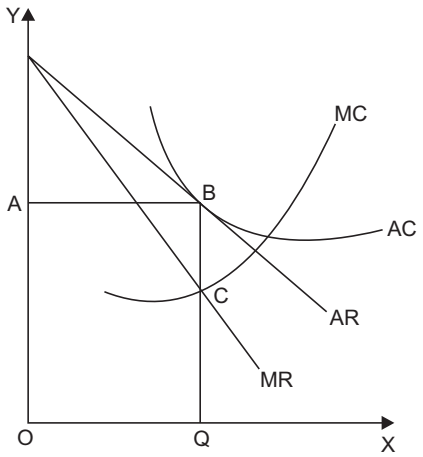

चित्र 3.10

जब फर्म की प्रति इकाई औसत लागत व प्रति इकाई औसत आगम बराबर होते हैं, अर्थात् AR = AC तब इस स्थिति में एकाधिकारी को सामान्य लाभ प्राप्त होता है। जिसे (चित्र 3.10) में दर्शाया गया है। OQ उत्पादन है तथा सन्तुलन बिन्दु B है क्योंकि इस बिन्दु पर AR = AC है इसलिये फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है।

3. हानि (Loss)

कभी-कभी एकाधिकारी को भी हानि की स्थिति का सामना करना पड़ जाता है।

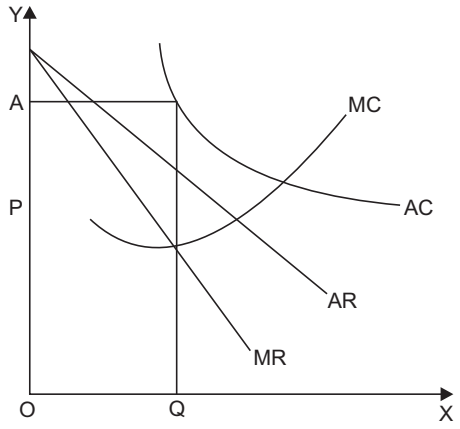

चित्र 3.11

क्योंकि बाजार की स्थिति सभी समय एक समान नही होती है। अल्पकाल में जब किसी एकाधिकारी फर्म की प्रति इकाई औसत लागत व प्रति इकाई औसत आगम से अधिक होती है। अर्थात् AC > AR हो तब फर्म को हानि होगी। जिसे उपरोक्त चित्र 3.11 में दर्शाया गया है।

नोट

उत्पादन की मात्रा = OQ

प्रति इकाई औसत कीमत = QC

प्रति इकाई औसत लागत = QB

फर्म की कुल हानि = PCBA

एकाधिकार का दीर्घकाल साम्य (Long Period Equilibrium of a Monopolist)

दीर्घकाल में एकाधिकारी असामान्य लाभ कमाता है। क्योंकि अधिक समय मिल जाने के कारण एकाधिकारी वस्तु की मांग की पूर्ति करने में सफल हो जाता है। इसके अतिरिक्त नयी फर्मों के प्रवेश के नियम कड़े होने के कारण अन्य फर्मे वस्तुओं के उत्पादन पर एकाधिकार जमाने में वंचित रह जाती हैं। दीर्घकाल में फर्म के सन्तुलन को अग्रलिखित (चित्र 3.12) में प्रदर्शित किया गया है–

फर्म के उत्पादन की मात्रा = OQ

फर्म की दीर्घकालीन औसत कीमत = OA

फर्म की दीर्घकालीन औसत लाभ = BC

फर्म की दीर्घकालीन लाभ = ABCD

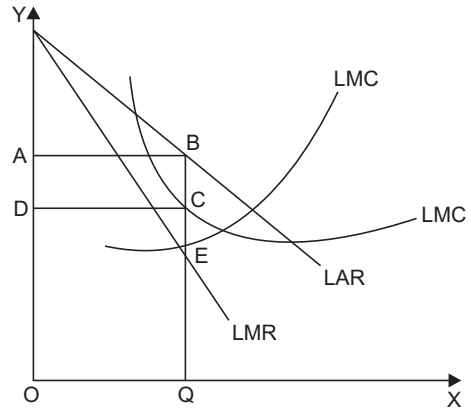

चित्र 3.12

3.6 मूल्य विभेद (Price Discrimination)

मूल्य विभेद से तात्पर्य है कि एक ही समय पर एक की वस्तु को विभिन्न-विभिन्न क्रेताओं को अलग-अलग मूल्य पर बेचना। इसे विवेचनात्मक एकाधिकार, भेदपूर्ण एकाधिकार तथा विभेदकारी आदि नामों से भी जाना जता है। एकाधिकारी अधिक लाभ अर्जित करने के लिये वस्तुओं को मूल्य में विभेद करता है जिससे वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण किया जा सके।

श्रीमती जॉन राबिन्सन के शब्दों में – "एक ही नियंत्रण के अन्तर्गत उत्पन्न एक ही वस्तु को विभिन्न क्रेताओं या उपभोक्ताओं को भिन्न-भिन्न कीमतों पर बेचने की क्रिया को मूल्य विभेद कहा जाता है।"

राबर्ट थॉमस के शब्दों में – "एकाधिकारी नीति की एक प्रकृति यह है कि एक ही वस्तु या सेवा की पूर्ति के भिन्न-भिन्न भागों का उपभोक्ताओं से भिन्न-भिन्न मूल्य लिया जाता है। इस प्रकार का मूल्य विभेद विभिन्न व्यक्तियों विभिन्न व्यवसायों, विभिन्न क्षेत्रों या एक समुदाय अथवा विभिन्न समुदाओं के मध्य हो सकता है।"

स्टिगलर के शब्दों में – "समान वस्तु के लिए दो या दो से अधिक मूल्य वसूल करने को मूल्य विभेद कहते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है। जब एकाधिकारी विभिन्न क्रेताओं से एक ही वस्तु को अलग-अलग मूल्य पर बेचने का कार्य करता है उसे ही मूल्य विभेद या कीमत विभेदीकरण कहते हैं।

मूल्य-विभेद के प्रकार (Types of Price Discrimination)

सामान्य रूप से मूल्य विभेद निम्न प्रकार का हो सकता है–

1. व्यक्तिगत मूल्य विभेद (Personal Price Discrimination)

जब एकाधिकारी अपनी ही समरूप वस्तु को विभिन्न व्यक्तियों से भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल करता है तो उसे व्यक्तिगत मूल्य विभेद कहते हैं। जैसे-डॉक्टर एवं वकील द्वारा अपनी सेवाओं और सलाह की भिन्न-भिन्न फीस वसूल करना।

2. भौगोलिक मूल्य विभेद (Geographical Price Discrimination)

जब विक्रेता विभिन्न स्थानों, नगरों एवं क्षेत्रों के व्यक्तियों से भिन्न-भिन्न कीमत वसूल करता है तब उसे भौगोलिक या स्थानीय मूल्य विभेद कहते हैं। जैसे-एक उत्पादक X वस्तु को अपने देश में कम कीमत पर बेचता है वही दूसरे देश में उसे कम या अधिक कीमत पर भी बेचता है।

3. प्रयोग के आधार पर मूल्य विभेद (Price Discrimination According to Use)

एक वस्तु को उपयोग के आधार पर अनेक कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता है और उसी के आधार पर उसकी कीमत निर्धारित की जाती है। जहाँ वस्तु की अधिक उपयोगिता होती है वहाँ उसकी कीमत अधिक रखी जाती है। उदाहरण के लिए औद्योगिक प्रयोग और घरेलू प्रयोग के लिए विद्युत आपूर्ति के लिए कीमत अलग-अलग होती है। जिसके कारण विद्युत दर अलग-अलग होती है।

4. छूट मूल्य विभेद (Discount Price Discrimination)

जब एकाधिकारी अपने ग्राहकों को वस्तु के मूल्य में छूट देकर अलग-अलग कीमत वसूल करता है तो यह छूट मूल्य विभेद कहलाता है। यह छूट वितरक छूट, नकदी छूट, मात्रा छूट, गैर मौसमी छूट के रूप में हो सकती है। उदाहरण के लिये एक निश्चित मात्रा से अधिक माल खरीदने पर विक्रेता के द्वारा कुछ मूल्य में से छूट का दिया जाना मूल्य विभेद है।

उपर्युक्त मूल्य विभेद के अतिरिक्त अन्य मूल्य विभेद होते हैं, जैसे- वर्ग मूल्य विभेद में रेलवे, आयु लिंग तथा पद के आधार पर विभिन्न कम्पनियों द्वारा अपने उत्पादित वस्तुओं पर मूल्य विभेद, समय के आधार पर टेलीफोन सेवायें एवं वस्तु की प्रकृति के अनुसार कीमत विभेद किया जाता है।

मूल्य विभेद की शर्तें या दशाएँ (Conditions for Price Discrimination)

एकाधिकारी मूल्य में विभेद निम्न शर्तो या दशाओं में ही कर सकता है जो इस प्रकार है-

1. एकाधिकारी स्थिति (Monopolistic Situation)

मूल्य में विभेदीकरण करने के लिये आवश्यक है कि फर्म का बाजार में एकाधिकार हो अन्यथा मूल्य में विभेदीकरण करना सम्भव नहीं है। यहाँ बाजार की अन्य दशाओं जैसे-पूर्ण प्रतियोगिता, अपूर्ण प्रतियोगिता आदि में पूर्णरूप से विभेदीकरण करना सम्भव नहीं हो पाता है।

2. मांग की लोच में भिन्नता (Difference in Elasticity of Demand)

मूल्य विभेद की नीति के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु की मांग की लोच अलग-अलग बाजारों में भिन्न-भिन्न हो। मूल्य विभेद वस्तु की लोच पर भी निर्भर करता है। यदि वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार है तब वस्तु का विभेदीकरण नहीं किया जा सकता है। इसलिये वस्तु की लोच पूर्णतया बेलोचदार या आंशिक लोचदार हो तभी एकाधिकारी अलग-अलग मूल्य वसूल कर सकता है।

3. पृथक बाजार (Separate Market)

मूल्य विभेद करने के लिये अधिक बाजारों का होना आवश्यक है क्योंकि एक ही बाजार में मूल्य विभेदीकरण करना सम्भव नहीं हो पाता है। मूल्य विभेद को सफल बनाने के लिए दो या दो से अधिक बाजार एक दूसरे से पृथक् और दूर-दूर स्थित होने चाहिए।

नोट

4. क्रय शक्ति अलग-अलग होना (Difference in Purchasing Power)

विभिन्न बाजारों में उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति भिन्न-भिन्न होनी चाहिये जिससे मूल्य विभेद किया जा सके।

5. परिवहन लागतों में विभिन्नता (Difference in Transportation Costs)

विभिन्न-विभिन्न क्षेत्रों के बाजारों में भौगोलिक दूरी अधिक होने के कारण परिवहन लागत अधिक हो जाती है। जिसे मूल्य विभेद द्वारा वसूल किया जाता है।

6. वस्तु के भिन्न-भिन्न उपयोग (Different Use of Commodity)

कुछ दशाओं में सरकार द्वारा वस्तुओं या सेवाओं की विभिन्न कीमतें लेने की स्वीकृति दे दी जाती है। जैसे-घरेलू एवं औद्योगिक विद्युत की कीमतों में अन्तर या ग्रामीण एवं नगरीय विद्युत की प्रति यूनिट में अन्तर आदि।

7. उपभोक्ताओं की अज्ञानता (Ignorance of Customer)

वास्तविक रूप से सभी उपभोक्ताओं को बाजार का पूर्णज्ञान नहीं होता है। जिसकी अज्ञानता का लाभ एकाधिकारी वस्तुओं के मूल्य में विभेद करके उठाता है।

8. वस्तुओं के हस्तान्तरण का आभाव

वस्तु अथवा सेवा की प्रकृति ऐसी हो जिसे एक बाजार से दूसरे बाजार तक हस्तान्तरण करना सम्भव न हो।

विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत व उत्पादन का निर्धारण (Price and Output Determination Under Discriminating Monopoly)

एकाधिकारी का उद्देश्य अपने कुल लाभ को अधिकतम करना होता है। इसलिए यह विभिन्न व्यक्तियों से उनकी मांग की लोच के आधार पर विभिन्न कीमतें वसूल करता है। किसी एकाधिकारी को अधिकतम लाभ तब प्राप्त होता है, जब उसके उत्पादन की सीमान्त लागत उसको प्राप्त सीमान्त आगम के बराबर हो जाती है। मूल्य विभेद तभी सम्भव होता है, जब दो बाजार हों तथा दोनों बाजारों में क्रेताओं की माँग की लोच में भिन्नता पाई जाती है। तभी वह दोनों बाजारों में अलग-अलग मूल्य वसूल कर सकेगा। यदि बाजार की लोच पूर्णत: लोचदार होगी तब मूल्य विभेद सम्भव नही है। मूल्य विभेदीकरण की निम्न शर्तें आवश्यक है जिन्हें पीछे दर्शाया गया है।

मूल्य विभेद के अन्तर्गत दो बाजार X और Y में मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण को (चित्र. 3.13) में दर्शाया गया है। जिससे स्पष्ट होता है कि X बाजार की लोच की तुलना में Y बाजार की लोच अधिक है। जिसके कारण एकाधिकारी X बाजार की तुलना में Y बाजार में कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा बेचता है। जिससे मूल्य विभेदीकरण करके लाभ कमाया जा सके।

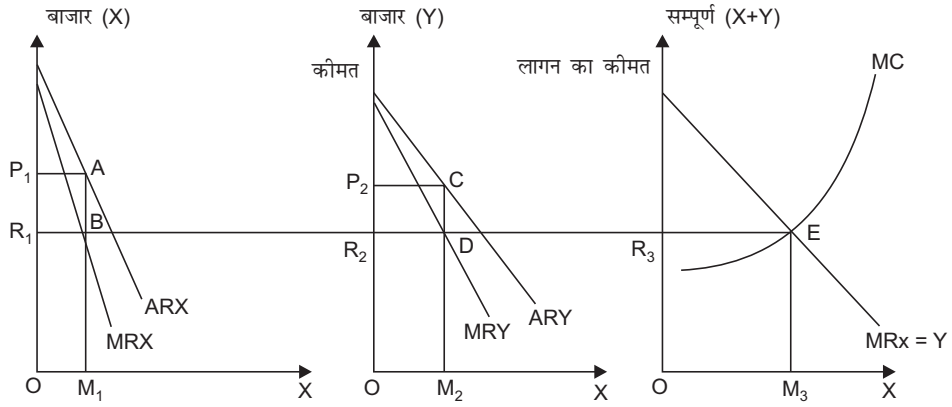

चित्र 3.13

बाजार Y में कीमत = OP_2

अन्त में कहा जा सकता है कि एकाधिकारी X और Y बाजारों में वस्तु की लोच के आधार पर विभिन्न-विभिन्न कीमतों पर वस्तु को बेचता है। जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त कर सके।

3.7 अपूर्ण व एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Imperfect and Monopolistic Competition)

वास्तविक रूप से अर्थव्यवस्था में न तो पूर्ण प्रतियोगिता और न एकाधिकार की स्थिति होती है। अपितु इनके बीच की स्थिति एकाधिकारात्मक की पायी जाती है।

जिसे सर्वप्रथम प्रो. एडवर्ड एच. चैम्बरलिन ने "एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता" की स्थिति की संज्ञा दी है, जिसे श्रीमति जॉन राबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता कहा है। प्रो. चैम्बरलिन ने वर्ष 1933 में प्रकाशित पुस्तक 'The Theory of Monopolistic Competition' में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का विचार प्रस्तुत किया है।

अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ है प्रतियोगिता का सीमित होना अर्थात् न तो प्रतियोगिता का आभाव हो और न ही प्रतियोगिता पूर्णता लिये हुए हो। दूसरे शब्दों में जब पूर्ण प्रतियोगिता की विभिन्न दशाओं में से किसी भी एक दशा का अभाव होता है तब अपूर्ण प्रतियोगिता जन्म लेती है। स्पष्ट है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के लिए विशुद्ध प्रतियोगिता में अपूर्णता होना जरूरी है।

फेयर चाइल्ड ने कहा है, "यदि बाजार उचित प्रकार से संगठित न हो, यदि क्रेता और विक्रेताओं के पारस्परिक सम्पर्क में कठिनाई उत्पन्न होती हो तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा खरीदी गई वस्तुओं और दिये गये मूल्यों को ज्ञात करने में समर्थन न हो तो ऐसी स्थिति को हम अपूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं।"

अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण एवं विशेषताएँ (Causes and Characteristics of Imperfect competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म देने वाले प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं, जिन्हें विशेषता भी कहा जाता है-

1. **अल्प संख्या में क्रेता व विक्रेता**-अपूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता और विक्रेता की संख्या कम होती है और व्यक्तिगत क्रेता या विक्रेता वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं।
2. **वस्तु की इकाइयों में अन्तर**-अपूर्ण प्रतियोगिता में विभिन्न विक्रेताओं द्वारा निर्मित वस्तुएँ बिल्कुल एक जैसी नहीं होती बल्कि उनमें कुछ अन्तर होता है। यह अन्तर आकार, रंग, रूप, किस्म, पैकिंग, ब्रान्ड, ट्रेडमार्क, विक्रेता के व्यवहार अथवा दुकान की स्थिति के कारण हो सकता है। इस अन्तर के कारण विभिन्न विक्रेताओं की वस्तुएं एक दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न तो नहीं होती है परन्तु निकट स्थानापन्न होती हैं।
3. **क्रेताओं और विक्रेताओं में अज्ञानता**-क्रेताओं और विक्रेताओं की अज्ञानता के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उन्हें बाजार का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण अलग-अलग मूल्यों पर वस्तुओं का क्रय विक्रय करना पड़ता है।
4. **क्रेताओं में आलस्य**-यह सम्भव है कि क्रेताओं को इस बात की जानकारी हो कि कौन सी वस्तु किस स्थान पर सस्ती मिल रही है, फिर भी वे आलस्य के कारण अपने आस-पास से ही महँगी वस्तु का क्रय कर लेते हों।
5. **अधिक यातायात व्यय**-अपूर्ण प्रतियोगिता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यातायात व्यय है। एक ही वस्तु को विभिन्न स्थानों पर लाने ले जाने में ऊँची यातायात व्यय आती है अतः एक ही वस्तु के विभिन्न स्थानों पर अनेक मूल्य प्रचलित होते हैं।

अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रकार (Types of Imperfect competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता के कई रूप हो सकते हैं जो मुख्य रूप से विक्रेताओं की संख्या तथा वस्तु विभेद के अंश पर निर्भर करते हैं। इस दृष्टि से अपूर्ण प्रतियोगिता की निम्न तीन बाजार स्थितियाँ बतायी जाती हैं-

नोट

(*i*) एकाधिकृत या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Monopolistic Competition)

(*ii*) द्वि-अल्पाधिकार या द्वयाधिकार प्रतियोगिता (Duopoly Competition)

(*iii*) अल्पाधिकार या अल्प विक्रेताधिकार प्रतियोगिता (Oligopoly Competition)

1. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का अर्थ व परिभाषा (Meaning and definitions of Monopolistic Competition)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगता से अभिप्राय उस अवस्था से है जिसमें विक्रेता वस्तुओं में इतना विभेद पाया जाता है कि वे एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न नहीं होतीं। प्रत्येक उत्पादक या विक्रेता का अपनी वस्तु पर पूर्ण एकाधिकार तो होता हैं, परन्तु चूँकि उसे बाजार में अपूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं के साथ प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है, इसलिए ऐसी अवस्था को एकाधिकारात्मक अवस्था कहते हैं। उदाहरण के लिए भारत में सिगरेट के कुछ उत्पादक है, जो अलग-अलग प्रकार के सिगरेट (कोई पनामा, कोई चारमीनार इत्यादि) का उत्पादन करते हैं। इन विभिन्न प्रकार के सिगरेटों के गुणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, केवल इनके अलग-अलग ट्रेड मार्क हैं और अलग-अलग नाम से ये बेचे जाते हैं। दूसरे शब्दों में, विभिन्न प्रकार के सिगरेटों के ब्रांडों के बीच प्रतियोगिता तो है किन्तु पूर्ण नहीं। इसका कारण यह है कि सिगरेटों के उत्पादक तो बहुत है, परन्तु इनके उत्पादन में विभिन्नता पायी जाती है। अर्थात् वे अलग-अलग ब्रांड की सिगरेटों का उत्पादन करते हैं।

चैम्बरलिन के शब्दों में-"एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता बाजार का वह रूप है जिसमें बहुत सी छोटी फर्में होती है और उनमें से प्रत्येक मिलती-जुलती वस्तुएँ बेचती हैं, परन्तु वस्तुएँ एकरूप नहीं होती है और वस्तुओं में थोड़ा अन्तर होता है।"

प्रो. रिचार्ड एच. लेफ्टविच के शब्दों में-"एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा के बाजार में एक विशेष किस्म की वस्तु के अनेक विक्रेता होते हैं तथा एक विक्रेता की वस्तु किसी न किसी रूप में दूसरे विक्रेता से भिन्न होती है जब विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक विक्रेता के कार्यों का दूसरे विक्रेता के कार्यों पर कोई स्पष्ट प्रभाव न पड़े तो यह उद्योग एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा का उद्योग बन जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा का अभिप्राय बाजार की एक ऐसी मिश्रित स्थिति से है जिसके अन्तर्गत पूर्ण प्रतिस्पर्धा तथा एकाधिकार दोनो के गुण पाये जाते हैं।

2. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की विशेषताएँ (Characteristics of Monopolistic Competition)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता बाजार में निम्न विशेषताएँ पायी जाती हैं।

1. स्वतन्त्र विक्रेताओं की अधिक संख्या।
2. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अंतर्गत वस्तुओं में विभेद पाया जाता है।
3. बाजार में गैर मूल्य प्रतियोगिता विद्यमान है।
4. नयी फर्मों का प्रवेश एवं बर्हिगमन।
5. दीर्घकाल में इस प्रतियोगिता में सामान्य लाभ प्राप्त होता है। क्योंकि फर्मों का प्रवेश स्वतंत्र एवं बर्हिगमन आसान हो जाता है।
6. विज्ञापन एवं विक्रय लागतों की उपस्थिति।
7. क्रेताओं को बाजार का पूर्ण ज्ञान का आभाव होता है।
8. प्रत्येक फर्म की अपनी नीति होती है पूर्ण प्रतियोगिता की भांति एकाधिकारात्मक प्रतियोगी में फर्म कीमत प्राप्तकर्ता नहीं होती।

3. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में मूल्य एवं उत्पादन का निर्धारण (Price and Output Under Monopolistic Competition)

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में मूल्य का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ उसकी MR और MC बराबर होती है।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल तथा दीर्घकाल में उत्पादन एवं मूल्य का निर्धारण अलग-अलग होता है-

(*i*) अल्पकाल में उत्पादन व मूल्य का निर्धारण (Price and Output Determination Under Short Period)–

(*ii*) दीर्घकाल में उत्पादन व मूल्य का निर्धारण (Price and Output Determination Under Long Period)–

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अर्न्तगत दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा क्योंकि नयी फर्मों के आ जाने के कारण अतिरिक्त लाभ घट जाता है, जिससे फर्मों को सामान्य लाभ प्राप्त होता है। दीर्घकाल में फर्म की सीमान्त आगम (MR) और सीमान्त लागत (MC) और औसत आगम (AR) व औसत लागत (AC) बराबर होनी आवश्यक है। दीर्घकाल में फर्म के सन्तुलन को (चित्र. 3.14) में दर्शाया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि फर्म को दीर्घकाल में सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

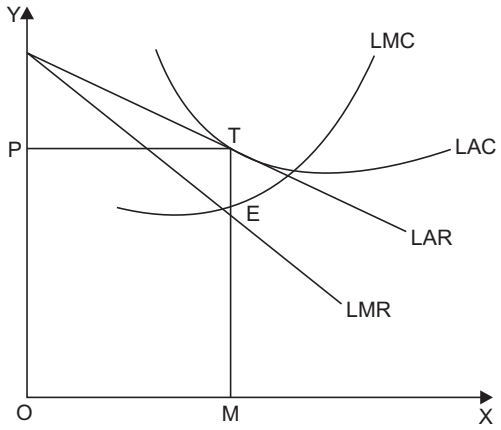

चित्र 3.14

दीर्घकाल में फर्म का साम्य बिन्दु = E

कुल उत्पादन की मात्रा = OM

प्रति इकाई औसत लागत = MT

प्रति इकाई औसत आगम = MT

अर्थात् LAR = LAC

इसलिए फर्म को दीर्घकाल में सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

द्वयाधिकार प्रतियोगिता (Duopoly Competition)

द्वयाधिकार से अभिप्राय, बाजार की उस स्थिति से है, जिसमें किसी एक ही सर्वथा समान अथवा लगभग समान वस्तु के दो उत्पादक होते हैं। दोनों ही अपने उत्पादन कार्य में स्वतंत्र होते हैं एवं दोनों की वस्तुएँ एक-दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं। यदि एक विक्रेता अपनी उपज अथवा कीमत सम्बन्धी नीति में परिवर्तन करता है, तो दूसरे की ओर से इसकी प्रभावशाली प्रतिक्रिया होती है।

इस प्रकार दोनों विक्रेताओं में से कोई भी बिना दूसरे की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखे उत्पादन की मात्रा अथवा कीमत को निश्चित नहीं कर सकता।

डॉ जोन (Dr. John) के शब्दों में "द्वि-विक्रेता एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है, जिसमें किसी एक ही सर्वथा समान अथवा लगभग समान वस्तु के दो उत्पादक होते है, जो अपने बीच कीमत अथवा उत्पादन मात्रा के विषय में किसी भी प्रकार के समझौते से बाध्य नहीं होते।"

नोट

अल्पाधिकार की भाँति द्वयाधिकार में भी दोनों विक्रेताओं के बीच पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है लेकिन फिर भी इन दोनों के बीच "कीमत युद्ध" की संभावना बहुत कम होती है। इसका कारण यह है कि केवल मात्र दो विक्रेता होने से इन दोनों के बीच समझौता आसानी से हो जाता है और दोनों ही ऊंची कीमत का लाभ आपस में मिलकर बाँट लेते हैं। हाँ, भेदित द्वयाधिकार की स्थिति में दोनों विक्रेता का बाजार अलग-अलग होता है और दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में एकाधिकारी की भाँति कार्य करते हैं और वस्तु की कीमत भी एकाधिकारी की तरह ही निर्धारित करते हैं।

द्वयाधिकार की विशेषताएँ (Characteristics of Duopoly)

द्वयाधिकार बाजार की निम्न विशेषताएँ होती है-

1. यह एक ऐसी स्थिति का द्योतक है जिनमें केवल दो ही उत्पादक होते हैं।
2. दोनों सर्वथा समान अथवा लगभग समान वस्तु का विक्रय करते है।
3. दोनों ही अपने उत्पादन कार्य में स्वतंत्र होते हैं तथा दोनों की वस्तुएँ एक दूसरे से प्रतियोगिता करती हैं।
4. अत: प्रत्येक प्रतिस्पर्धा को स्वयं अपनी नीति का निर्धारण करने में दूसरे प्रतिस्पर्धा की नीति को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। अर्थात् दोनों विक्रेताओं के बीच पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है।
5. द्वयाधिकार नामक बाजार स्थिति एकाधिकार के निकट मानी जाती है, क्योंकि कुछ विशेषताएँ एकाधिकार जैसी होती हैं।
6. जब दो विक्रेता एक रूप एवं एक गुण जैसी वस्तु बेचते हैं तब उसे विशुद्ध द्वयाधिकार कहते हैं।

फ्रांस के अर्थशास्त्री कूनों (Cournot) तथा इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्री एजवर्थ (Edgeworth) ने सर्वप्रथम द्वयाधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण की समस्या का अध्ययन किया और उस समस्या के समाधान के लिए सुनियोजित मॉडल प्रस्तुत किए। इन अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत समाधान की परम्परावादी सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों में जिन्होंने द्वयाधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण की समस्या का अध्ययन किया उनमें चैम्बरलिन (Chemberline), बॉमोल (Banumol), स्वीजी (Sweazy) आदि अर्थशास्त्रियों के नाम उल्लेखनीय है।

एकाधिकार और एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर (Distinction Between Monopoly and Monopolistic Competition)

एकाधिकार और एकाधिकृत प्रतियोगिता वाले बाजार में निम्नलिखित समानताएँ और असमानताएँ हैं-

समानताएँ:

1. दोनों बाजारों मे साम्य वहाँ स्थापित होता है जहाँ सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है।
2. दोनों में ही मांग-वक्र अथवा औसत आय-वक्र नीचे दायीं ओर ढाल वाला होता है और उसके अनुरूप सीमान्त आय-वक्र मांग-वक्र के नीचे स्थित होता है।
3. दोनों बाजार अवस्थाओं में साम्य बिन्दु औसत आय रेखा अथवा मांग रेखा अथवा कीमत रेखा से नीचे स्थित होता है।
4. दोनों अवस्थाओं मे अतिरिक्त क्षमता पायी जाती है अर्थात् दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को माँग-वक्र इसके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करता।
5. दोनों बाजारों में ही उत्पादक कीमत-निर्धारक होते हैं अर्थात् वे अपनी इच्छानुसार कीमत में परिवर्तन कर सकते हैं।

असमानताएँ:

1. एकाधिकार के अन्तर्गत एक वस्तु का केवल एक ही उत्पादक होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में उत्पादकों की संख्या बहुत होती है।
2. एकाधिकार में उद्योग और फर्म में कोई अन्तर नहीं पाया जाता जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में अनेक फर्में होती हैं तथा इसमें उद्योग को समूह कहते हैं।
3. एकाधिकार में वस्तु-विभेद नहीं पाया जाता क्योंकि इसमें एक ही वस्तु का उत्पादन किया जाता है। इसके विपरीत एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तुएँ आकार, डिजाइन, रंग, पैकिंग, सुगन्ध आदि के कारण एक-दूसरे से भिन्न रहती हैं जिससे वस्तु-विभेद पाया जाता है।
4. एकाधिकार में सामान्यतया विक्रय लागतों का आभाव रहता है परन्तु एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या अधिक होने पर प्रतियोगिता के कारण विक्रय लागतों पर व्यय करना अनिवार्य होता है।
5. एकाधिकार में वस्तुएँ निकट स्थानापन्न नहीं होतीं जिनके कारण वस्तु की माँग कम लोचदार होती है। इसके विपरीत एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तुएँ निकट स्थानापन्न होती हैं। जिससे हर फर्म की वस्तु की माँग अधिक लोचदार होती है।
6. वस्तु की कीमत निश्चित करने में जितनी स्वतंत्रता एकाधिकारी को होती है, उतनी एकाधिकृत प्रतियोगी फर्म को नहीं होती। एकाधिकारी वस्तु की कीमत भी सामान्यतया एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तु की कीमत से अधिक होती है।
7. एकाधिकार में एकाधिकारी का वस्तु की कीमत अथवा पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होने के कारण कोई भी फर्म एकाधिकारी उद्योग में प्रवेश नहीं कर सकती इसके विपरीत एकाधिकृत प्रतियोगिता में दीर्घकाल में फर्में समूह में प्रवेश कर सकती है और उससे बाहर भी जा सकती हैं, क्योंकि इस बाजार अवस्था में प्रतियोगिता का अंश भी पाया जाता है।
8. एकाधिकार में फर्मों के प्रवेश का भय न होने के कारण एकाधिकारी दीर्घकाल में भी असमान्य लाभ कमाता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्में दीर्घकाल में सामान्य लाभ ही अर्जित करती है क्योंकि फर्मों का बहिर्गमन और प्रवेश उद्योग में होता रहता है।

पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर (Difference Between Perfect & Imperfect or Monopolistic Competition)

1. **क्रेता और विक्रेताओं की संख्या**-पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता और विक्रेता बहुत अधिक संख्या में होते हैं, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है।
2. **वस्तु**-पूर्ण प्रतियोगिता में निर्मित व बिक्रीत वस्तुएँ एकरूप होती हैं, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तु विभेद होता है अर्थात् वस्तु में गुण, रूप, पैकिंग, ट्रेडमार्क, वजन आदि में अन्तर होता है।
3. **बाजार ज्ञान**-पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं को बाजार की पूर्ण जानकारी होती है, जबकि अपूर्ण अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता में क्रेता और विक्रेता को बजार की पूर्ण ज्ञान नहीं होता है।
4. **फर्मों का प्रवेश व बहिर्गमन**-पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश व पुरानी फर्मों का बहिगर्मन बहुत सरल होता है, जबकि अपूर्ण अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्मों का प्रवेश व बहिर्गमन हो सकता है लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति बहुत सरल नहीं होता है।
5. **मूल्य निर्धारण**-पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग मूल्य निर्धारित करता है और प्रत्येक फर्म मूल्य ग्रहण करने वाली (Price Taker) होती है और प्रत्येक फर्म द्वारा स्वीकृत होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म एक सीमा तक मूल्य को प्रभावित और निर्धारित करती है।
6. **मूल्यों में समानता**-पूर्ण प्रतियोगिता में सम्पूर्ण बाजार में एक समान मूल्य पाया जाता है और यह मूल्य सभी क्षेत्रों के बाजारों में एक समान होता है, जबकि अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में मूल्य अलग-अलग होता है।

नोट

7. **माँग रेखा का स्वरूप**-पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म के लिए माँग रेखा (अर्थात् औसत आगम रेखा) एक समानान्तर पड़ी रेखा होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में माँग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर झुकती हुई होती है।
8. **सीमान्त और औसत आगम**-पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम (AR) और सीमान्त आगम (MR) दोनों बराबर होते हैं और एक ही रेखा द्वारा दोनों दिखायें जाते हैं, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में औसत आगम (AR) सीमान्त आगम (MR) से अधिक होती है।
9. **परिवहन एवं विक्रय लागत**-पूर्ण प्रतियोगी बाजार की इस दशा में परिवहन एवं विक्रय लागतें नहीं होती हैं, जबकि अपूर्ण बाजार में परिवहन एवं विक्रय लागतें होती हैं।
10. **गैर मूल्य प्रतियोगिता**-पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्मों के बीच गैर मूल्य प्रतियोगिता नहीं होती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता बाजार में गैर मूल्य प्रतियोगिता जैसे-आकर्षक पैकिंग, आसान उधार, विज्ञापन, घर पर माल पहुँचाने आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान होती है।
11. **वास्तविकता**-पूर्ण प्रतियोगी बाजार एक काल्पनिक स्थिति है जो व्यावहारिक जीवन में नहीं पायी जाती है, जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता बाजार एक वास्तविक स्थिति है जो बाजार में पायी जाती है।

3.8 अल्पाधिकार (Oligopoly)

जब किसी बाजार में वस्तु के उत्पादन या विक्रय पर कुछ फर्मों का आधिपत्य होता है, उसे अल्पाधिकार की अवस्था कहते है। (Oligopoly) शब्द ग्रीक भाषा के 'Oligo' तथा 'Poly' से मिलकर बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ 'अल्प' तथा 'विक्रेता' अर्थात् अल्प विक्रेता। सामान्य रूप से अल्पाधिकारी बाजार वह बाजार होता है, जिसमें दो से अधिक तथा बीस से कम विक्रेता होते है, उसे अल्पाधिकार बाजार कहते हैं।

मेयर्स के अनुसार-"अल्पाधिकार बाजार की उस अवस्था को कहते हैं, जहाँ विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि प्रत्येक विक्रेता बाजार की कीमत पर प्रभाव डालता है तथा प्रत्येक विक्रेता इस बात को जानता है।"

प्रो. स्टिगलर के अनुसार-"अल्पाधिकार वह स्थिति होती है जिसमें कोई फर्म अपनी बाजार नीति कुछ निकट प्रतियोगिता के सम्भावित व्यवहार पर स्थापित करती है।"

प्रो. लेफ्टविच के अनुसार-'बाजार की उस दशा को अल्पाधिकार कहते हैं जिसमें थोड़ी संख्या में विक्रेता पाये जाते हैं तथा प्रत्येक विक्रेता की क्रियायें दूसरों के लिए महत्वपूर्ण होती है।'

अल्पाधिकार की विशेषताएँ (Characteristics of Oligopoly)

एक अल्पाधिकारी बाजार में निम्न विशेषताएँ पाई जाती है-

1. अल्पाधिकार बाजार में विक्रेताओं की संख्या अल्प होती है।
2. अल्पाधिकार बाजार में कीमत स्थिरता पायी जाती है।
3. अल्पाधिकार उद्योग में नयी फर्मों का प्रवेश कठिन होता है।
4. अल्पाधिकार की दशा में प्राय: सभी फर्में विज्ञापन और विक्रय प्रोत्साहन पर अधिक ध्यान देती है।
5. अल्पाधिकार बाजार में फर्में समरूप एवं विभेदित दोनों प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करती है।
6. बाजार के अन्य प्रकारों की तुलना में अल्पाधिकार की स्थिति में फर्मों की माँग वक्र बहुत अनिश्चित होती है।
7. अल्पाधिकार में उत्पादन कार्य में लगी हुई सभी फर्में एक दूसरे पर निर्भर होती हैं अर्थात् एक दूसरे पर आश्रित होती हैं।
8. फर्मों में एकरूपता का अभाव पाया जाता हैं।

अल्पाधिकार में मूल्य व उत्पादन का निर्धारण (Price and Output Determination Under Oligopoly)

अल्पाधिकार बाजार के अर्न्तगत कीमत व उत्पादन का निर्धारण सामान्यत: निम्नांकित तीन विधियों से हो सकता है

(*i*) स्वतन्त्र मूल्य निर्धारण (Independent pricing)

(*ii*) गुटबन्दी के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Pricing Under Collusion)

(*iii*) मूल्य नेतृत्व के अर्न्तगत मूल्य निर्धारण (Pricing Under Price Leadership)

स्वतन्त्र मूल्य निर्धारण (Independent pricing)

सामान्य रूप से बाजार में स्वतन्त्र प्रतियोगिता होती है, जिसके कारण उद्योग एवं फर्में अपने-अपने मूल्य निर्धारण करने में स्वतन्त्र होती है। सभी फर्में बाजार से अधिक लाभ कमाने के चक्कर में कम मूल्य पर भी वस्तु बेचना प्रारम्भ कर देती हैं। जिसके कारण बाजार में कीमत युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। परिणामत: कमजोर फर्में बाजार से बाहर हो जाती हैं।

गुटबन्दी के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Pricing Under Collusion)

स्वतंत्र मूल्य निर्धारण की हानियों, अनिश्चितताओं तथा असुरक्षा आदि जो उत्पन्न होती है उससे बचने के लिए अल्पाधिकारी फर्में मूल्य तथा उत्पादन की मात्रा के सम्बन्ध में कभी-कभी आपस में समझौता कर लेती हैं जिसे गुटबन्दी कहते हैं। गुटबन्दी से तात्पर्य है कि उसके अन्तर्गत विक्रेताओं के बीच कीमत व उत्पादन मात्रा आदि के सम्बन्ध में किसी न किसी प्रकार का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष समझौता हो जाता है। गुटबन्दी दो प्रकार की होती है-

(अ) पूर्ण गुटबन्दी (Perfect Collusion),

(ब) अपूर्ण गुटबन्दी (Imperfect Collusion),

(अ) पूर्ण गुटबन्दी (Perfect Collusion)

इसके अन्तर्गत एक केन्द्रीय संस्था की स्थापना की जाती है जिसे कार्टेल (Cartel) कहते हैं। कार्टेल के द्वारा गुट की सभी फर्मों के लिए उत्पादन की मात्रा और मूल्य निर्धारित किया जाता है और व्यक्तिगत फर्मों की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। कार्टेल उत्पादन की मात्रा और मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित करती है जहाँ पर उद्योग की कुल सीमान्त लागत (TMC) उद्योग की कुल सीमान्त आगम (TMR) के बराबर हो जाती है। इसे अग्र रेखाचित्र में प्रदर्शित किया गया है।

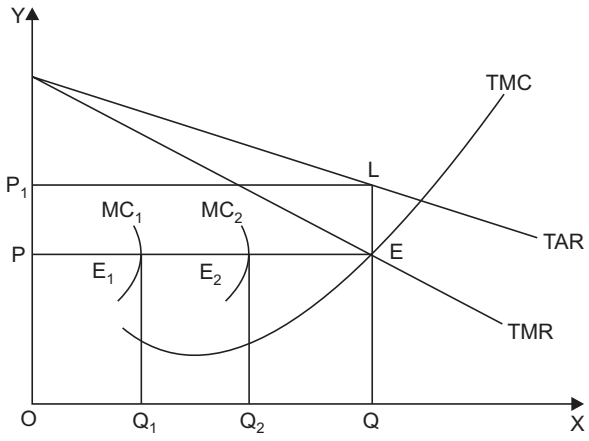

चित्र 3.15

(चित्र 3.15) में TMR और TMC वक्र E बिन्दु पर बराबर हो जाते है अत: सम्पूर्ण उद्योग के द्वारा OQ उत्पादन किया जाता है जिसका मूल्य औसत आगम (TAR) से OP_1 ज्ञात होती है। इस कुल उत्पादन OQ का विभाजन दो अल्पाधिकारी फर्मों में OQ_1 और OQ_2 के बराबर होगा जो कुल उत्पादन मात्रा के बराबर होगा।

नोट

पूर्ण गुटबन्दी की स्थिति काल्पनिक एवं अस्थायी होती है क्योंकि इसमें उत्पादन कोटा के विभाजन पर सदस्य फर्मों में मतभेद हो जाता है और वे गठबन्धन को छोड़ देती हैं। सरकारी हस्तेक्षप भी पूर्ण गठबन्धन की नीति में बाधा पहुँचाता है।

(ब) अपूर्ण गुटबन्दी (Imperfect Collusion)

इसके अन्तर्गत कोई केन्द्रीय संस्था या कार्टेल नही होती है बल्कि उद्योग की समस्त फर्मे वस्तु के मूल्य और उत्पादन की मात्रा के सम्बन्ध में 'भले आदमियों का समझौता' (Gentlemen's Agreement) कर लेती हैं। प्रत्येक फर्म को कुछ सीमा तक कीमत और उत्पादन मात्रा निर्धारण की स्वतन्त्रता होती है परन्तु मूल्य युद्ध से बचने के लिए आपसी सहमति का रास्ता अपनाया जाता है। वास्तविक जीवन में गुटबन्दी का यह स्वरूप अधिक देखने को मिलता है। अपूर्ण गुटबन्दी का सर्वाधिक प्रचलित रूप मूल्य नेतृत्व होता है।

मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण (Pricing Under Price Leadership)

मूल्य नेतृत्व उस स्थिति को कहते हैं जिसमें किसी एक फर्म द्वारा तय किये गये मूल्य को अन्य अल्पाधिकारी फर्मे स्वीकार कर लेती हैं। जो फर्म मूल्य निर्धारण और परिवर्तन में पहल करती है उसे मूल्य नेता (Price Leader) कहते हैं। बाकी सब फर्मे जो नेता के मूल्य का अनुसरण कहती हैं उन्हें मूल्य अनुयायी (Price Follower) कहते हैं। आर्थर बर्न्स (Arther Burns) के अनुसार, "यदि एक ही फर्म द्वारा सदैव या प्राय: मूल्य में परिवर्तन किये जाते हैं और अन्य विक्रेता मूल्य के इन्ही परिवर्तनों का अनुसरण कहते हैं तो इस प्रकार की मूल्य स्पर्धा मूल्य नेतृत्व के अर्न्तगत आती है।" मूल्य नेतृत्व वह नीति है जिसमें उद्योग की अधिकांश इकाइयाँ उसके एक सदस्य द्वारा निर्धारित किये गये मूल्य को अपनाते हैं।

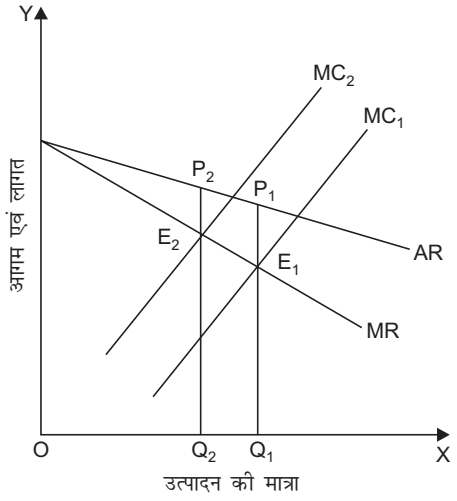

चित्र 3.16

मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत नेतृत्व करने वाली फर्म बड़ी होती है तथा वस्तु के कुल उत्पादन में उसका बड़ा हिस्सा होता है। शेष फर्मे छोटे आकार की होती है जो कम मात्रा में उत्पादन करती हैं। अत: सभी छोटी फर्मे बड़ी एवं अनुभवी फर्मों द्वारा निर्धारित मूल्य पर विक्रय करती हैं। यह नीति 'सत्ता शक्तिशाली के हाथ में (Survival of the fittest) के सिद्धान्त पर आधारित है। भारत में सेल (Steel Authority of India Limited SAIL) इस्पात उद्योग में मूल्य नेतृत्व का उदाहरण है।

मूल्य नेतृत्व के अन्तर्गत अल्पाधिकार मूल्य एवं उत्पादन निर्धारण को (चित्र 3.16) में प्रदर्शित किया गया है। MC_1 तथा MC_2 दो फर्मों की अलग-अलग सीमान्त लागत की रेखाएँ हैं। AR और MR औसत आगम और सीमान्त आगम की रेखाएँ हैं जो दोनों फर्मों के लिए एक समान है। फर्म जिसकी सीमान्त लागत MC_1 कम है वह E_1 बिन्दु पर $MR = MC_1$ के होने पर OQ_1 मात्रा का उत्पादन P_1Q_1 मूल्य पर करेगी। दूसरी फर्म जिसकी सीमान्त लागत MC_2 पहली फर्म से अधिक है वह E_2 सन्तुलन बिन्दु पर $MR = MC_2$ होने पर OQ_2 मात्रा का उत्पादन P_2Q_2 मूल्य पर करेगी। पहली फर्म का मूल्य दूसरे से कम है और उत्पादन भी अधिक है। अत: पहली फर्म मूल्य नेता होगी और उसके द्वारा निर्धारित मूल्य ही दूसरी फर्म द्वारा अनुसरण कर ली जायेगी। इस प्रकार मूल्य नेता का कम मूल्य ही प्रचलित मूल्य होगा।

अल्पाधिकार और एकाधिकार में अन्तर (Distinction Between Oligopoly and Monopoly)

संख्या

अल्पाधिकार में एक वस्तु के थोड़े से विक्रेता होते हैं जबकि एकाधिकार में वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है।

वस्तु

(अ) अल्पाधिकार में वस्तु समरूप हो सकती है और वस्तु विभेद भी पाया जा सकता है जबकि एकाधिकार में एक विक्रेता के साथ एक ही वस्तु पर विचार किया जाता है।

(ब) अल्पाधिकार में वस्तु के निकट के स्थानापन्न पदार्थ पाये जा सकते हैं जबकि एकाधिकार में वस्तु के स्थानापन्न पदार्थ नहीं पाये जाते।

प्रतिद्वन्दी फर्म का प्रभाव

अल्पाधिकार में एक फर्म के कीमत-उत्पत्ति निर्णय दूसरी प्रतिद्वन्दी फर्मों के कीमत उत्पत्ति निर्णयों को अवश्य प्रभावित करते हैं जबकि एकाधिकारी के कार्यों पर अन्य फर्मों के कार्यों का एवं उसके कार्यों का अन्य फर्मों के कार्यों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

माँग-वक्र

अल्पाधिकार में एक फर्म के माँग-वक्र या औसत आय-वक्र का पता लगाना प्राय: कठिन होता है जबकि एकाधिकार में फर्म के माँग-वक्र या औसत आय-वक्र का पता लगाया जा सकता है।

विज्ञापन

अल्पाधिकार में फर्में विज्ञापन का व्यापक रूप से उपयोग करती हैं और अपनी वस्तु की डिजाइन सुधारने पर भी विशेष ध्यान देती हैं जबकि एकाधिकारी फर्म को बहुधा विज्ञापन का सहारा नहीं लेना पड़ता और अपनी वस्तु की डिजाइन को सुधारने पर भी विशेष ध्यान नहीं देना पड़ता।

3.9 सारांश (Summary)

- पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है, जिसमें क्रेता और विक्रेता अधिक संख्या में होते हैं, उनमें पूर्ण एवं स्वतन्त्र प्रतियोगिता पाई जाती है और कोई भी क्रेता अथवा विक्रेता वस्तु विशेष की कीमत को अपने क्रय-विक्रय द्वारा प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता।
- एकाधिकार पूर्ण प्रतियोगिता के बिल्कुल विपरीत होता है। एकाधिकार शब्द का उद्‌गम दो ग्रीक शब्द 'MONOS' तथा 'POLUS' से हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'अकेला' (Single) और 'विक्रेता' (Seller) है। अत: एकाधिकार बाजार की वह अवस्था है, जिसमें वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है, तथा उस वस्तु की उत्पादन एवं पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।

नोट

- मूल्य विभेद से तात्पर्य है कि एक ही समय पर एक ही वस्तु को विभिन्न-विभिन्न क्रेताओं को अलग-अलग मूल्य पर बेचना। इसे विवेचनात्मक एकाधिकार, भेदपूर्ण एकाधिकार तथा विभेदकारी एकाधिकार आदि नामों से भी जाना जाता है। एकाधिकारी अधिक लाभ अर्जित करने के लिये वस्तुओं के मूल्य में विभेद करता है जिससे वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण किया जा सके।
- अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ है प्रतियोगिता का सीमित होना अर्थात् न हो प्रतियोगिता का अभाव हो और न ही प्रतियोगिता पूर्णता लिये हुए हो। दूसरे शब्दों में जब पूर्ण प्रतियोगिता की विभिन्न दशाओं में से किसी भी एक दशा का आभाव होता है तब अपूर्ण प्रतियोगिता जन्म लेती है। स्पष्ट है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के लिए विशुद्ध प्रतियोगिता में अपूर्णता होना जरूरी है।

1.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. विभेदात्मक एकाधिकार से आप क्या समझते हैं?
2. एकाधिकार और एकाधिकृत प्रतियोगिता में क्या अन्तर है?
3. एकाधिकारी प्रतियोगिता की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
4. पूर्ण प्रतियोगिता में बाजार में कीमत का निर्धारण किस प्रकार होता है?
5. सीमान्त आगम व सीमान्त लागत की रीतियों का सचित्र वर्णन कीजिये।
6. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के सन्तुलन की प्रमुख विधियों का वर्णन कीजिये।
7. पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में फर्म की संस्थिति की विवेचना कीजिये।
8. अल्पाधिकार बाजार में मूल्य व उत्पादन के निर्धारण की मूल्य विधियों की विवेचना कीजिये।
9. पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता में भेद कीजिये। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के सन्तुलन की विवेचना कीजिये।

1.11 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

- प्रेम आहूजा एवं एच. एल. आहूजा: उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त; एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली (हिन्दी एवं अग्रेजी)।
- प्रो. वी. सी. सिन्हा; व्यष्टि अर्थशास्त्र; प्रयाग पुस्तक भवन; इलाहाबाद।
- एस. एन. लाल एवं एस. के. लाल; अर्थशास्त्र के सिद्धान्त; शिव पब्लिशिंग हाउस; इलाहाबाद।
- बी. पी. त्यागी; व्यष्टि अर्थशास्त्र; राज पब्लिशिंग हाउस; जयपुर।
- M.L. Jhingan; Microeconomic theory; Vrinds Publication (P) Ltd. Delhi; (Hindi & English).
- अमिताभ तिवारी एवं बद्री विशाल त्रिपाठी; अर्थशास्त्र के सिद्धान्त; किताब महल, इलाहाबाद।

इकाई–4

बाजार विफलता : अर्थ एवं स्त्रोत
(Market Failure : Meaning and Sources)

संरचना (Structure)

4.1 उद्देश्य (Objectives)
4.2 प्रस्तावना (Introduction)
4.3 वस्तुओं और सेवाओं के प्रकार (Types of Goods and Services)
4.4 वर्जित वस्तुएँ तथा बाजार विफलता (Excludable Goods and Market Failure)
4.5 बाजार विफलता के स्त्रोत के रूप में वर्जित परंतु गैर-प्रतिद्वंद्वी वस्तुएँ (Excludable but Non-rivalrous Goods as a Source of Market Failure)
4.6 गैर-वर्जित वस्तुएँ और बाजार विफलता (Non-excludable Goods and Market Failure)
4.7 बाहरी प्रभाव तथा बाजार विफलता (Externalities and Market Failure)
4.8 ऋणात्मक बाहरी प्रभाव (Negative Externality)
4.9 धनात्मक बाहरी प्रभाव (Positive Externality)
4.10 बाहरी प्रभाव तथा कोस सिद्धांत (Externalities and the Coase Theory)
4.11 ऊँची समझौता (या लेन-देन) लागतें (High Transaction Costs)
4.12 सारांश (Summary)
4.13 शब्दकोश (Keywords)
4.14 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

4.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- वस्तुओं और सेवाओं के प्रकार जानने हेतु।
- बाहरी प्रभाव तथा बाजार विफलता जानने हेतु।
- बाहरी प्रभाव तथा कोस सिद्धांत समझने हेतु।
- ऊँचा समझौता लागतें जानने हेतु।

4.2 प्रस्तावना (Introduction)

बाजार विफलता से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें बाजार तंत्र, जो माँग और पूर्ति की शक्तियों पर आधारित है, स्वयं ही अपने आप एक कुशल साधन आवंटन के लिए पर्याप्त नहीं है। बाजार विफलता के मुख्य स्त्रोतों में से

नोट

एक स्त्रोत एकाधिकार बाजार संरचना (Monopoly Market Structure) है। यह कैसे घटित होता है, इसका विवरण नीचे दिया गया है–

एकाधिकारी के माँग वक्र का ढलान नीचे की ओर होता है। इसलिए औसत आगम (AR) सीमांत आगम (MR) से अधिक हो जाता है। एक फर्म की संतुलन शर्त है कि MR = MC। जब AR > MR (और MR = MC), तब इसका अर्थ है कि कीमत सीमांत लागत से अधिक होती है (AR > MC)। ऐसी स्थिति में उत्पादन भी पूर्ण प्रतियोगी उद्योग के उत्पादन की तुलना में कम होगा। इसलिए एकाधिकार की स्थिति में लाभ अधिकतम की शर्त तो पूरी हो जाती है परंतु कुशलता वाली शर्त प्राप्त नहीं होती, इसलिए बाजार संसाधनों के कुशल आवंटन में विफल हो जाता है।

जे. बी. टेलर, *के शब्दों में,* ***''बाजार विफलता वह स्थिति है जो कुशल आर्थिक लागत को प्राप्त नहीं करती और जिसमें सरकार के हस्तक्षेप की संभावना होती है। इसके तीन मुख्य कारण हैं–सार्वजनिक पदार्थ, बाहरी प्रभाव तथा बाजार शक्ति।''*** (*Any situation in which the market does not lead to an efficient economic outcome and in which there is potential role of government. There are three broad sources of market failure : Public goods, externalities and market power,–**J.B. Taylar***)

एकाधिकारी बाजार संरचना के अतिरिक्त बाजार विफलता के अन्य भी कई स्त्रोत हैं। इन सभी स्त्रोतों का संक्षेप में विवरण नीचे दिया गया है–

1. जब फर्में न्यूनतम लागत पर कार्य नहीं कर रही होतीं और अतिरिक्त क्षमता (Excess Capacity) प्रकट करती हैं। एकाधिकार के अतिरिक्त ऐसी बाजार विफलता एकाधिकारी प्रतियोगिता में भी पाई जाती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत, फर्म LAC के घटते हुए भाग (Decreasing Segment of LAC) पर उत्पादन करने की प्रवृत्ति रखती है, जिसका अर्थ है कि पूर्ण प्रतियोगी अवस्था की तुलना में उत्पादन का कम होना।
2. जब संपत्ति अधिकार (Property Rights) अकेले रूप में (Exclusively) किसी एक निजी व्यक्ति का अधिकार नहीं है बल्कि संपत्ति का प्रयोग व्यक्ति कर सकता है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति एक संसाधन पर अपना सामान्य संपत्ति अधिकार प्रकट करता है और इसलिए संसाधन के अत्यधिक शोषण की प्रवृत्ति प्रकट करता है।
3. जब किसी वस्तु के प्रयोग से मिलने वाले लाभ के लिए गैर-अदायगी करने वाले (Non-Payers) को अलग करना संभव न हो। ऐसा सामान्यतया सड़कों, पुलों, कानून व्यवस्था आदि सार्वजनिक पदार्थों (Public Good) के मामले में देखा गया है, इनका प्रयोग सभी करते हैं, चाहे वे इसके प्रयोग के लिए कुछ शुल्क (Fees) देते हैं अथवा नहीं।
4. जब किसी एक एजेंट की आर्थिक क्रिया अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करती है परंतु ऐसे प्रभाव की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। इसे बाहरी प्रभाव (Externality) कहा जाता है। यह उत्पादन अथवा उपभोग किसी में भी हो सकती है।

बाजार विफलता सरकारी हस्तक्षेप को बुलावा देती है

संसाधनों के कुशल आवंटन की प्राप्ति के लिए बाजार विफलता सरकारी हस्तक्षेप को बुलावा देती है। सरकारी हस्तक्षेप निम्नलिखित तत्त्वों/पैरामीटरों पर ध्यान केंद्रित करता है–

1. *बाजार विफलता के अनेक कारणों को ध्यान में रखकर आर्थिक कुशलता में सुधार करना।*
2. *समता (Equity) के कुछ स्वीकृत मानदंडों (Accepted Standard) को प्राप्त करने में समाज के सदस्यों की सहायता करना।*
3. *आर्थिक विकास की दर को प्रभावित करना।*
4. *आय और कीमत स्तरीय उतार-चढ़ावों के बदले में अर्थव्यवस्था को स्थिरता प्रदान करना।*
5. *समाज में रहने वाले निजी व्यक्तियों तथा गृहस्थों के संपत्ति अधिकारों को स्थापित करना एवं उनकी रक्षा करना।*

5. जब अपूर्ण सूचना उपलब्ध हो या सूचना सही नहीं है अथवा इसको बाजार में पूरी तरह से फैलाया नहीं गया है। विभिन्न परिवर्तनों एवं इनके परिणामों संबंधी सूचना हो सकता है। आर्थिक एजेंटों की सीमित

संख्या की जानकारी में हो। **असमित सूचना** (Asymmetric Information) अर्थात् असंतुलित सूचना भी बाजार विफलता का एक स्रोत है।

6. जब एकाधिकारी शक्ति के कारण उत्पादक वस्तु की कीमत को इसकी सीमांत लागत से अपसारित (Diverge) या बदल देते हैं।
7. जब बाजार लुप्त या विद्यमान नहीं हों।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरिए (Fill in the blanks)–

1. बाजार विफलता के मुख्य स्रोतों में से एक स्रोत ..... बाजार संरचना है।
2. एकाधिकारी के माँग वक्र का ढलान ..... की ओर होता है।
3. बाजार विफलता ..... हस्तक्षेप को बुलावा देती है।

4.3 वस्तुओं और सेवाओं के प्रकार (Types of Goods and Services)

बाजार विफलता के विषय क्षेत्र की संपूर्ण जानकारी के लिए वस्तुओं के विभिन्न प्रकारों का ज्ञान आवश्यक है, ये प्रकार हैं **सार्वजनिक वस्तुएँ** (Public Goods), **सामूहिक संपत्ति संसाधन** (Common Property Resources) **और सामान्य वस्तुएँ** (Normal Goods)। इन वस्तुओं के बीच यह अंतर वस्तुओं की चार मुख्य विशेषताओं पर आश्रित है, ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(*i*) प्रतिद्वंद्वी उपभोग (Rivalrous or Rival Consumption)

(*ii*) गैर-प्रतिद्वंद्वी उपभोग (Non-rivalrous or Non-rival Consumption)

(*iii*) एकाकी/वर्जित (Excludable)

(*iv*) गैर-एकाकी/गैर-वर्जित (Non-excludable)

(i) **प्रतिद्वंद्वी उपभोग** (Rivalrous or Rival Consumption)–किसी वस्तु के उपभोग को प्रतिस्पर्धी तब माना जाता है जब व्यक्ति A द्वारा उपभोग करने से इस वस्तु की उपलब्धता व्यक्ति B के लिए कम हो जाती है। अतएव दोनों व्यक्ति (A तथा B) एक दूसरे की संतुष्टि को कम किए बिना उसी वस्तु का उपभोग नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए, यदि राहुल जूस पीता है, रोहित उसी जूस को पी नहीं सकता; एक व्यक्ति द्वारा इसका उपभोग दूसरे व्यक्तियों को इससे वर्जित (Exclude) कर देता है। **इसलिए उन वस्तुओं (जैसे सेब, पेप्सी, कोला, मशीन आदि) का उपभोग जो दूसरे व्यक्तियों के लिए इसकी उपलब्धता को कम कर देता है, प्रतिद्वंद्वी वस्तुएँ कहलाती हैं।** इन्हें निजी वस्तुएँ (Private) भी कहा जाता है।

(ii) **गैर-प्रतिद्वंद्वी उपभोग** (Non-rivalrous or Non-rival Consumption)–एक वस्तु तब गैर-प्रतिद्वंद्वी या इसका उपभोग तब गैर-प्रतिद्वंद्वी होता है जब किसी व्यक्ति (मान लीजिए A) द्वारा इसके उपभोग करने से अन्य व्यक्ति के लिए इसका उपभोग कम नहीं होता। अर्थात् वस्तु की समान इकाई एक से अधिक व्यक्तियों के उपभोग के लिए उपलब्ध होती है।

पार्क, राष्ट्रीय सुरक्षा, सड़कें, पुल आदि गैर-प्रतिद्वंद्वी वस्तुएँ हैं। एक पार्क, जिसमें सभी आ-जा सकते हैं, का आनंद उन सभी व्यक्तियों को प्राप्त होता है जो वहाँ घूमने के लिए जाते हैं। इसी भाँति किसी भी देश के लोग राष्ट्रीय सुरक्षा प्रणाली द्वारा उपलब्ध कराई गई सुरक्षा (Security) से समान रूप से लाभान्वित होते हैं।

(iii) **वर्जित** (Excludable)–कोई वस्तु तब वर्जित कही जाती है जब इसके उपभोग से गैर-अदायगी कर्ताओं (Non-Payers) को वर्जित या अलग करना संभव हो। अन्य शब्दों में, जब संपत्ति अधिकारों का लागू करना इस प्रकार से संभव हो कि केवल अदायगीकर्ता (Payers) ही उस वस्तु के उपभोग का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। रमेश पीजा खाता है, परंतु यह राजू के लिए उपलब्ध नहीं है क्योंकि रमेश का इस पर स्वामित्व

नोट

है और उसी पीजा को खाने का उसका अधिकार है। इसी भाँति यदि आप ने एक कार खरीदी है, कार के आप मालिक हैं और इस पर आपका संपत्ति अधिकार (Property Right) है, इसलिए कोई अन्य व्यक्ति, आपकी अनुमति बिना, इसका प्रयोग नहीं कर सकता । संपत्ति अधिकारों के एक बंदोबस्त से ऐसे पदार्थ/वस्तुएँ वर्जित हो जाते हैं।

(iv) **गैर-वर्जित** (Non-excludable)–ये वे वस्तुएँ हैं जिनके लिए कोई भी व्यक्ति परिभाषित संपत्ति अधिकार नहीं बना सकता। सड़कें, पुल, सार्वजनिक नल, स्ट्रीट लाईट आदि वे वस्तुएँ हैं जिनके उपभोग को संपत्ति अधिकारों द्वारा वर्जित या अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि ये सामूहिक संपत्ति (Common Property) हैं। गैर-अदायगीकर्त्ताओं (Non-Payers) को स्ट्रीट लाईट के लाभ उठाने से वर्जित करना कठिन है, क्योंकि गली में जलने वाली बिजली की बत्तियाँ सामूहिक संपत्ति हैं।

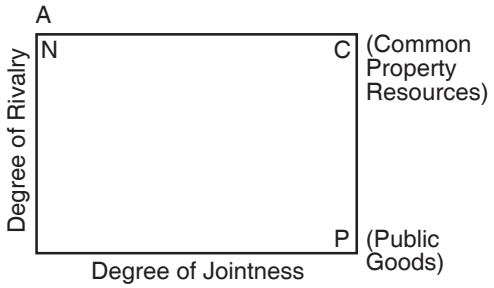

चित्र 4.1

प्रतिद्वंद्वी, गैर-प्रतिद्वंद्वी, वर्जित तथा गैर-वर्जित वस्तुओं की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करने के बाद हम अब सार्वजनिक वस्तुओं, सामूहिक संपत्ति संसाधनों तथा सामान्य वस्तुओं की व्याख्या चित्र 4.1 की सहायता से करेंगे। चित्र 4.1 में, क्षैतिज अक्ष (Horizonatal Axis) पर संयुक्तता की मात्रा (Degree of Jointness) और ऊर्ध्वाधर अक्ष (Vertical Axis) पर प्रतिद्वंद्वता की मात्रा (Degree of Rivalry) को मापा गया है।

सार्वजनिक वस्तुओं में गैर-वर्जितता और गैर-प्रतिद्वंद्विता की विशेषता पाई जाती है (Public goods have characteristics of non-excludability and non-rivalry)। इसलिए हम कह सकते हैं कि इनमें संयुक्तता की ऊँची मात्रा तथा प्रतिद्वंद्विता की शून्य मात्रा पाई जाती है। चित्र 4.1 में इसे नीचे तल में दाईं ओर (Bottom Right) द्वारा प्रकट किया गया है।

सामूहिक संपत्ति संसाधनों में प्रतिद्वंद्विता की ऊँची मात्रा पाई जाती है परंतु ये गैर-वर्जित भी हैं (Common property resources have high degree of rivalry but are also non-excludable)। इसको चित्र 4.1 में ऊपरी तल में दाईं ओर (On Top Right) C बिंदु द्वारा दिखाया गया है।

सामान्य वस्तुएँ प्रतिद्वंद्वी तथा वर्जित भी होती हैं (Normal goods are rival and also excludable)–इसलिए इनमें प्रतिद्वंद्विता की ऊँची मात्रा और संयुक्तता की शून्य मात्रा पाई जाती है, इसे चित्र 4.1 में ऊपरी तल बाईं ओर (On Top Left) N बिंदु द्वारा दर्शाया गया है।

4.4 वर्जित वस्तुएँ तथा बाजार विफलता (Excludable Goods and Market Failure)

लाभों को अधिकतम करने की दृष्टि से निजी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ स्वाभाविक रूप से वर्जित (Excludable) होनी चाहिए। उत्पादक, उन व्यक्तियों द्वारा इन वस्तुओं के उपभोग को रोक सकते हैं जो इनके लिए कुछ भी भुगतान नहीं करते। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो एक ओर उनको आय की हानि (Revenue Loss) होगी और दूसरी ओर उनके लाभ अधिकतम करने की अभिलाषा पूरी नहीं होगी।

ऐसा होने पर भी बाजार विफलता हो सकती है। बाजार पूर्णता के लिए वर्जितता एक आवश्यक शर्त है परंतु पर्याप्त शर्त नहीं है। (Excludability is a necessary condition for market perfection, but not a sufficient condition.) **वे वस्तुएँ जो वर्जित हैं हो सकता है वे प्रतिद्वंद्वी न हों।** (Goods which are excludable may not be rivalrous) इसके उदाहरण हैं आर्ट गैलरियाँ, म्यूजियम, बाड़ लगे पार्क आदि। एक व्यक्ति द्वारा इनका प्रयोग अन्य व्यक्तियों द्वारा इसके प्रयोग को वर्जित नहीं करता। प्रश्न यह है कि इन वस्तुओं के लिए कुशल कीमत प्रणाली (Efficient Pricing System) को हम कैसे ढूँढ़ सकते हैं। अपनी संतुष्टि स्तर पर निर्भर विभिन्न प्रयोगकर्ता (Users) इनके लिए विभिन्न कीमत देने के लिए इच्छुक होंगे।

*इस संदर्भ में **लिप्सी** का कहना है कि, **''बाजार में बिक्री के लिए फर्म द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तु के लिए वर्जितता एक आवश्यक शर्त है।''** (Excludability is a necessary condition for a good to be produced by a firm for sale in the market. – **Lipsey**)*

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)–

4. बाजार विफलता वह स्थिति है जो कुशल आर्थिक लागत को ..... नहीं करती।
   (अ) प्राप्त (ब) स्वीकार (स) अस्वीकार (द) इनमें से कोई नहीं
5. सार्वजनिक वस्तुओं में गैर-वर्जितता और गैर-प्रतिद्वंद्विता की पाई जाती है–
   (अ) कमी (ब) भावना (स) विशेषता (द) इनमें से कोई नहीं
6. सामान्य वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जो वर्जितता तथा प्रतिद्वंद्विता दोनों को करती हैं–
   (अ) प्रकट (ब) स्थायी (स) अप्रकट (द) इनमें से कोई नहीं
7. उत्पादक, उन व्यक्तियों द्वारा इन वस्तुओं के उपभोग को रोक सकते हैं जो इनके लिए कुछ भी नहीं करते–
   (अ) काम (ब) भुगतान (स) व्यय (द) इनमें से कोई नहीं
8. 'अन्य वस्तुएँ' वे वस्तुएँ हैं जो वर्जितता की विशेषता को तो पूरा करती हैं परंतु प्रतिद्वंद्विता की ..... को नहीं।
   (अ) शर्त (ब) वास्तविकता (स) विशेषता (द) इनमें से कोई नहीं।

4.5 बाजार विफलता के स्रोत के रूप में वर्जित परंतु गैर-प्रतिद्वंद्वी वस्तुएँ (Excludable but Non-rivalrous Goods as a Source of Market Failure)

इस संदर्भ में हम 'सामान्य वस्तुओं' तथा 'अन्य वस्तुओं' के बीच अंतर कर सकते हैं। **सामान्य वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जो वर्जितता तथा प्रतिद्वंद्विता दोनों को प्रकट करती हैं।** इसलिए ये वस्तुएँ बाजार विफलता का स्रोत नहीं हो सकतीं, ऐसा तब संभव है जब उत्पादक आवंटनात्मक कुशलता की शर्त को पूरा करते हैं, अर्थात् वे उस बिंदु पर कार्य करते हैं जहाँ AR = MC है।

'अन्य वस्तुएँ' वे वस्तुएँ हैं जो वर्जितता की विशेषता को तो पूरा करती हैं परंतु प्रतिद्वंद्विता की शर्त को नहीं। इसलिए ये वस्तुएँ बाजार विफलता का एक स्रोत हैं।

4.6 गैर-वर्जित वस्तुएँ और बाजार विफलता (Non-Excludable Goods and Market Failure)

नोट

प्रतिद्वंद्विता के आधार पर गैर-वर्जित वस्तुओं का उपविभाजन दो श्रेणियों में किया जा सकता है–

(*i*) सामूहिक संपत्ति संसाधन

(*ii*) सार्वजनिक वस्तुएँ/पदार्थ

ये दोनों कुछ प्रमुख बाजार विफलताओं की ओर अग्रसर हो सकती हैं–

(*i*) सामूहिक संपत्ति संसाधन (Common Property Resources)

जैसा कि चित्र 4.1 में दिखाया गया है, सामूहिक संपत्ति संसाधन (CPR) को ऊपरी तत्त्व में दाईं ओर (On Top Right) बिंदु C द्वारा प्रदर्शित किया गया है, जहाँ संयुक्तता की ऊँची मात्रा (High Degree of Jointness) और प्रतिद्वंद्विता की ऊँची मात्रा (High Degree of Rivalry) को दर्शाया गया है। अन्य शब्दों में, यह प्रतिद्वंद्वी तथा गैर-वर्जित वस्तुओं को प्रकट करता है। अतएव सामूहिक संपत्ति संसाधन (CPR) के लिए किसी का भी एकाकी (Exclusive) संपत्ति अधिकार नहीं है और इसका प्रयोग कोई भी कर सकता है। समुद्र में मछली पकड़ना CPR का एक उदाहरण है। जैसे एक व्यक्ति द्वारा मछली का पकड़ना दूसरे व्यक्ति द्वारा मछली के पकड़ने को प्रभावित करता है, परंतु दूसरे व्यक्ति को मछली पकड़ने से रोका नहीं जा सकता या वर्जित नहीं किया जा सकता, क्योंकि समुद्र में मछली पकड़ने के लिए किसी का भी एकाकी (Exclusive) संपत्ति अधिकार नहीं है।

उदाहरण के लिए, गाँव की सामूहिक भूमि (Common Land) पर सभी किसानों का स्वामित्व होता है, एक किसान द्वारा अपनी भेड़ें वहाँ चराने से अन्य किसानों की भेड़ों के लिए उपलब्ध चारा कम हो जाता है, इसे **''सामूहिकता की त्रासदी''** (Tragedy of Commons) कहा जाता है अथवा इसे सांझेपन का दुखांत नाटक भी कहा जा सकता है।

अतएव सामूहिक संपत्ति का अकुशल प्रयोग होता है तथा अतिशोषण होता है। यह स्वयं संपत्ति के विनाश (Destruction) की सीमा तक हो सकता है।

CPR के मामले में, बाजार संयंत्र संसाधनों के कुशल आवंटन को प्रस्तुत करने में असफल रहता है।

सामूहिक संपत्ति संसाधन का सामाजिक इष्टतम शोषण (Socially Optimal Exploitation of CPR)–CPR सामाजिक इष्टतम शोषण/प्रयोग क्या होना चाहिए? हम इस धारणा को एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। हम मछली पकड़ने का उदाहरण लेते हैं। यहाँ यह सामाजिक इष्टतम होगा कि मछली पकड़ने के लिए एक और नाव की वृद्धि की जाए, यदि नाव के प्रचलन की लागत उस कुल पकड़ी मछली के मूल्य (Value of Total Catch) से कम (या बराबर) है जो अतिरिक्त नाव के कारण हुई है (Cost to operate the boat is less than (equal to) the value of total catch by the additional boat.)।

> ***लिप्सी** के शब्दों में, **''एक सामूहिक संपत्ति संसाधन सामाजिक इष्टतम आवंटन तब होता है जब अंतिम प्रयोगकर्ता की सीमांत लागत कुल उत्पादन में हुई सीमांत वृद्धि के मूल्य के बराबर हो जाती है।''** (The socially optimal allocation of a common property resource occurs when the marginal cost of the last user equals the value of the marginal addition to total output. **Lipsey.**)*

इसी भाँति, सामूहिक भूमि के मामले में, यह इष्टतम होगा यदि चराने के लिए एक और भेड़ में वृद्धि की जाए, यदि चराने की लागत (अर्थात् भेड़ों को उपलब्ध चारे की हानि) उस दूध या गोश्त के मूल्य से कम (या बराबर) है जो वह भेड़ प्रदान करती है)

अतएव, CPR के सामाजिक इष्टतम शोषण/प्रयोग के संदर्भ में, हमें अतिरिक्त प्रयोगकर्ता (Additional User) की सीमांत लागत को कुल उत्पादन में हुई सीमांत वृद्धि के मूल्य के बराबर होगा (We have to equate marginal cost of additional user with the value of the marginal addition to total output.)

स्वतंत्र बाजार अथवा पूर्णतया प्रतियोगी बाजार सामाजिक इष्टतम समाधान प्रस्तुत नहीं करते (The free markets or perfectly competitive markets do not offer socially optimal solutions.)–मछली पकड़ने का उदाहरण लेते हुए, मछली पकड़ने वाले उद्योग में प्रवेश का निर्णय अथवा मछली पकड़ने के कार्य में एक नई नाव का लगाना इस बात पर निर्भर करता है कि विशेष प्रकार की नाव (Typical Boat) के मछली पकड़ने का औसत मूल्य क्या है और नई नाव के चलाने की लागत क्या है। स्वतंत्र बाजार के अंतर्गत, सामूहिक संपत्ति संसाधन के नए प्रयोगकर्ता बाजार में वृद्धि करते जाते हैं जब तक कि अंतिम प्रवेशकर्ता (Last Entrant) की सीमांत लागत वर्तमान उत्पादकों (Existing Producers) के औसत उत्पादन के बराबर नहीं हो जाता। अतएव जब CPR का अत्यधिक प्रयोग (Over-usage) होता है, तब शोषण इसका परिणाम हो जाता है।

इस स्थिति की चित्र 4.2 द्वारा व्याख्या की गई है–

कुल पकड़/फाँस (Catch) का मूल्य घटती दर पर तब तक बढ़ता है जब तक ON नावें नहीं लगाई जातीं, इसके बाद अतिरिक्त नावों के परिणामस्वरूप, इसमें घटने की प्रवृत्ति पाई जाती है। सामाजिक इष्टतम स्तर तब प्राप्त होता है जब OS नावों को लगाया जाता है।

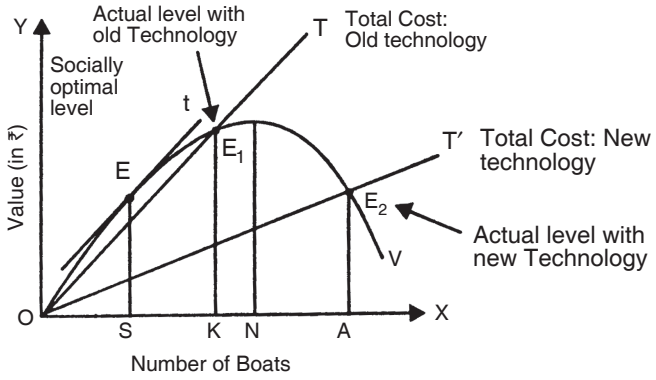

चित्र 4.2

जब OS नाव लगाई जाती है तब
T वक्र का ढलान = V वक्र के ढलान

यह कैसे? यहाँ पुरानी तकनीक अपनाए जाने के कारण V वक्र का ढलान T वक्र के ढलान के बराबर है।

इसका अर्थ या भाव यह है कि सीमांत लाभ (V-वक्र के ढलान द्वारा बतलाए अतिरिक्त पकड़/फांस (Catch) के रूप में) सीमांत लागत (T-वक्र के ढलान द्वारा व्यक्त एक अतिरिक्त नाव के दौड़ाने की लागत के रूप में) के बराबर है, अर्थात् OS नाव लगाने पर सीमांत लाभ (Marginal Benefit) = सीमांत लागत (Marginal Cost)

ध्यान से देखें कि E बिंदु पर *t* रेखा V वक्र का स्पर्श बिंदु है और T रेखा के समानांतर है (Note that **t** line is tangent to the V curve and is parallel to the **T** line)

एक स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था में क्या उद्यमी सामूहिक संपत्ति मछली पकड़ने के प्रयोग के T बिंदु पर रुक जाएँगे। उत्तर है कि नहीं। इसका कारण यह है कि वे अभी भी यह महसूस करते हैं कि एक अतिरिक्त नाव के प्रचालन की लागत (Cost of Operating an Additional Boat) अनुमानित आय (Expected Revenue) से कम है।

मछली पकड़ना (Fishing) पुरानी तकनीक के साथ E_1 तक जारी रहेगा (जब OK) नावों को चलाया जाता है) और नई तकनीक के साथ E_2 तक जारी रहेगा (जब OA नावों को चलाया जाता है)। प्रत्येक नया **प्रवेशकर्ता** (Entrant) अपनी औसत मछली **पकड़/फांस** (Catch) या (औसत उत्पाद) को एक अतिरिक्त नाव की **प्रचालन लागत** (Cost of opeating an Additional Boat) के बराबर करता है। परंतु त्रासदी (Tragedy)

नोट

यह है कि वह व्यवसाय में अपने प्रवेश की सामाजिक लागत को ध्यान में नहीं रखता। सामाजिक लागत जिससे वह बच (Miss) रहा है वह **मछली पकड़** (Catch) की वह हानि है जो वह अन्य मछली पकड़ने वालों (Fishermen) या मछेरों को दे रहा है। इसका कारण यह है कि सामूहिक **संपत्ति मछली पकड़ने** (Common Property Fishing) का E_2 तक शोषण होता है, जब OA **नावों का प्रचालन वह भी तब जब कि उत्पादन को ऋणात्मक सीमांत प्रतिफल** (Negative Marginal Returns) के आगे या बाद में भी बढ़ाया जाता है। अतएव सामूहिक संपत्ति संसाधनों के अंतर्गत, उत्पादन का स्तर (नावों की संख्या) बहुत ऊँचा होगा, क्योंकि नया प्रवेशकर्ता उस हानि को ध्यान में नहीं रखेगा जो वह वर्तमान उत्पादकों (मछेरों) को दे रहा है।

ऐसी समस्या सभी **मछली स्थानों** (Fishery Grounds) में तब तक पाई जाती है, जब तक कि सरकार द्वारा मछलियों के पकड़ने पर रोक लगाने संबंधी कोई **अधिनियम** (Regulation) नहीं बनाया जाता।

सामूहिक संपत्ति संसाधन के अतिशोषण से कैसे बचा जा सकता है? (How can Over-exploitation of CPR be Avoided?)–सामूहिक संपत्ति के अतिशोषण या अत्यधिक प्रयोग से दो प्रकार से बचा जा सकता है या इसे दो प्रकार से कम किया जा सकता है।

पहले सुझाव के अनुसार प्रयोग के **इष्टतम स्तर** (Optimum Level of Use) को माना या समझा जाए और फिर उस स्तर को **नियंत्रणों** (Control) द्वारा **प्रतिबंधित** (Restrict) किया जाए। यह सामान्यतया उन मामलों या मदों में किया जाता है जैसे **शिकार करने के लाइसेंस** (Hunting Licenses), **मछली पकड़ने का कोटा** (Fishing Quota) आदि। परंतु इस सुझाव/समाधान (Solution) की कुछ समस्याएँ हैं। बेशक इसके द्वारा समुद्र में मछली पकड़ने की मात्रा को नियंत्रित करना असंभव नहीं है परंतु इसमें भारी खर्च या लागत होती है, यदि **कोटा उल्लंघन** (Quota Violations) से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय मामलों की दी हुई संख्या को देखा जाए। अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कई ऐसे मामले हैं जहाँ कोटा निश्चित किए जाने के बाद भी, इसका (नियंत्रण का) उल्लंघन किया गया है।

दूसरे सुझाव/समाधान के अनुसार संपत्ति अधिकारों की स्पष्ट रूप से व्याख्या की जाए, उन्हें **एकाकी** (Exclusive) बनाया जाए। एक CPR प्रकृति से प्रतिद्वंद्वी (Rival) है, एकाकी संपत्ति अधिकार बना देने का अर्थ यह होगा कि CPR में सामान्य वस्तुओं की दोनों विशेषताएँ हैं (*i*) वर्जितता तथा (*ii*) प्रतिद्वंद्विता। यह स्वतंत्र बाजार दशाओं में कुशल आवंटन को सुविधाजनक बना देगा।

परंतु फिर भी समता (Equity) और कुशलता के बीच टकराव पाया जाता है। दरअसल सामूहिक भूमि के मामले में सामूहिक संपत्ति अधिकारों का प्रयोग प्रणाली में समता बढ़ाने के लिए किया जाता है, जो निश्चित रूप से कुशलता की लागत पर है।

इससे हमारे आगे यह विचार-विमर्श (Debate) पैदा होता है कि क्या कुशलता अधिक महत्त्वपूर्ण है या समता? इस चुनाव के आधार पर ही दूसरे सुझाव का लागू होना निर्भर करता है।

(*ii*) सार्वजनिक वस्तुएँ और बाजार विफलता (Public Goods and Market Failure)

सार्वजनिक वस्तुएँ या **'सामुदायिक उपभोग वस्तुएँ'** (Collective Consumption Goods) बाजार विफलता के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

सार्वजनिक वस्तुओं में गैर-प्रतिद्वंद्विता तथा गैर-वर्जितता की विशेषता पाई जाती है। इसके उदाहरण हैं सुरक्षा सेवाएँ, कानून व व्यवस्था सेवाएँ आदि। इन सेवाओं के प्रयोग के लिए चाहे कोई भुगतान कर रहा है अथवा नहीं, ये सेवाएँ सभी के लिए उपलब्ध हैं। इसलिए ये सेवाएँ **गैर-वर्जित** (Non-excludable) हैं। इसी भाँति इन सेवाओं का किसी एक व्यक्ति द्वारा उपभोग अन्य व्यक्तियों के लिए इनकी उपलब्धता को कम नहीं करता है।

इनकी गैर-वर्जितता तथा गैर-प्रतिद्वंद्विता की विशेषता के कारण, सार्वजनिक वस्तुओं का बाजार संयंत्र की प्रणाली में कुशलापूर्वक आवंटन नहीं किया जा सकता (क्योंकि इनके मामले में निजी लाभ तथा निजी लागत की तुलना में समाज/समुदाय को सामाजिक लाभ अधिक है) अतएव ये वस्तुएँ सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाती हैं और इन पर होने वाले खर्च के लिए वित्त प्रबंध सरकार करों तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त आय द्वारा करती है।

सार्वजनिक वस्तुएँ कब उपलब्ध कराई जानी चाहिए, इनके लिए कितना और कौन भुगतान करता है? इस संदर्भ में निम्नलिखित अवलोकन ध्यान देने योग्य हैं–

नोट

(*i*) सार्वजनिक पदार्थ तब उपलब्ध कराए जाने चाहिए जब सुरक्षित कीमत (Reservation Price) का जोड़ सार्वजनिक वस्तु की लागत से अधिक या बराबर हों। **सुरक्षित कीमत वह अधिकतम कीमत है जो कोई व्यक्ति सार्वजनिक वस्तुओं की उपलब्धता के लिए देने को तैयार होता है, ताकि उसे समान या अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो।**

उदाहरण–10 परिवारों के एक सरकारी इलाके में एक सामूहिक टेलीविजन का उपलब्ध कराना एक सार्वजनिक वस्तु है। यह गैर-प्रवर्तित तथा गैर-प्रतिद्वंद्वी है। इसे कब लगाया-उपलब्ध कराया जाना चाहिए? स्पष्ट है कि तब जब उस संबंधित इलाके के निवासी जो कीमत या राशि इसके लिए देने के लिए तैयार हैं वह टी. वी. लगाने की कुल लागत/खर्च के बराबर हो या उससे अधिक हो।

(*ii*) सार्वजनिक वस्तुएँ कितनी मात्रा में उपलब्ध कराई जानी चाहिए? सामान्य वस्तुओं के मामले में, यदि एक इकाई का एक व्यक्ति द्वारा उपभोग किया जाता है, इसका अन्य व्यक्तियों द्वारा उपभोग नहीं किया जा सकता। इसलिए एक दी हुई कीमत पर, माँगी गई वांछित मात्रा का ही उत्पादन किया जाता है। अन्य शब्दों में, सामान्य वस्तुओं के मामले में, सामूहिक (Aggregate) माँग वक्र या कुल माँग वक्र प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत माँग वक्र के समस्तरीय जोड़ (Horizontal Summation of Individual Demand Curve to Derive Aggregate Demand Curve.) को ढूँढा जाता है और एक विशेष कीमत (Particular Price) वांछित मात्रा का उत्पादन किया जाता है। परंतु तब सार्वजनिक वस्तुओं का संबंध है, उनकी कुछ मात्रा सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध होती है। इसलिए वस्तु की दी हुई मात्रा के अनुरूप इसकी चार्ज या प्राप्त की गई कीमत प्रत्येक व्यक्ति वस्तु के लिए दिए मूल्य के बराबर अवश्य होनी चाहिए।

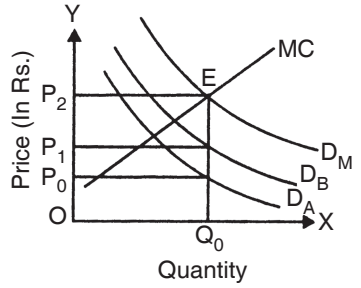

चित्र 4.3

इसके अनुरूप व्यक्तिगत माँग वक्रों का खड़ा या सीधा जोड़ (Vertical Summation) निकाला जाता है, जैसा चित्र 4.3 से स्पष्ट होता है।

इस चित्र में, सार्वजनिक वस्तु के लिए दो व्यक्तियों A तथा B की माँग को D_A तथा D_B वक्रों द्वारा दर्शाया गया है। सीधे/खड़े जोड़ द्वारा, हमें D_M वक्र प्राप्त होता है जो दोनों व्यक्तियों की सामूहिक माँग है, यह माँग वक्र (D_M) प्रकट करता है कि वस्तु एक निश्चित मात्रा के लिए कितनी सामूहिक कीमत देने के लिए तैयार है।

MC वक्र सार्वजनिक वस्तु उपलब्ध कराने की सीमांत लागत है, यह पूर्ति वक्र भी है।

E संतुलन बिंदु है जिस पर OP_2 कीमत पर माँगी गई मात्रा पूर्ति की गई मात्रा के बराबर है। सार्वजनिक वस्तु की OQ_0 मात्रा दी गई है जो A तथा B दोनों व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है।

प्रत्येक इकाई उपलब्ध करवाने की लागत अर्थात् OP_2 दोनों व्यक्तियों के बीच बाँटी जाती है। A व्यक्ति प्रत्येक इकाई के लिए OP_0 तथा B व्यक्ति OP_1 देता है, इसलिए $OP_0 + OP_1$ OP_2।

अतएव OQ_0 इष्टतम मात्रा का उत्पादन किया जाता है और इसकी उपलब्ध कराने की लागत इसके प्रयोगकर्ताओं द्वारा आपस में बाँटी जाती हैं।

परंतु, हमेशा के लिए यह संभव नहीं है कि पूर्ति-माँग समीकरणों (Equations) के सिद्धांत के द्वारा प्रचालन किया जाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि सार्वजनिक वस्तु की समान मात्रा सबके लिए उपलब्ध है (क्योंकि

नोट

सार्वजनिक पदार्थ गैर-प्रतिद्वंद्वी हैं) परंतु कुछ प्रयोगकर्ता इन वस्तुओं के प्रयोग को निश्चित रूप से छिपाएंगे अर्थात् वे यह प्रकट नहीं करेंगे कि उन्होंने इन वस्तुओं का प्रयोग किया है।

एक क्षेत्र में टी. वी. की उपलब्धता वाले पिछले उदाहरण में कोई भी प्रयोगकर्ता दूसरे के मुकाबले में इसका निःशुल्क प्रयोग कर सकता है। ऐसी स्थिति में, सार्वजनिक वस्तु/पदार्थ या तो उपलब्ध नहीं कराया गया है या टी. वी. लगाने की लागत को निश्चित रूप से इसके सभी प्रयोगकर्ताओं ने सहा नहीं है अर्थात् इसके लिए किए खर्च का भुगतान नहीं किया है।

निःशुल्क प्रयोगकर्ता (Free Rider) की समस्या से बचने के विचार से सार्वजनिक पदार्थों पर होने वाले खर्च प्रबंध अक्सर सरकार द्वारा किये जाते हैं, सरकार इसके लिए करों से प्राप्त आय (Tax-Revenue) को खर्च करती है, किसी बिक्री आय (Sales Revenue) को नहीं।

4.7 बाहरी प्रभाव तथा बाजार विफलता (Externalities and Market Failure)

बाजार विफलता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्रोत बाहरी प्रभाव है। संपत्ति अधिकारों के अभाव के कारण बाहरी प्रभाव उदय होता है। **बाहरी प्रभाव से अभिप्राय उस अवस्था से है जिसमें किसी लेन-देन से संबंधित लागत अथवा लाभ न केवल लेन-देन करने वालों बल्कि अन्य पक्षों को भी प्रभावित करता है** (By 'Externality' we mean the situation when the cost or benefits related to a transaction not only affects the transactors but also other parties.) इसे **तीसरा पक्ष प्रभाव** (Third Party Effect) भी कहते हैं।

मैकोनल के अनुसार, **''बाहरी प्रभाव तब उदय होता है जब किसी वस्तु अथवा सेवा के उत्पादन अथवा उपभोग से जुड़े कुछ लाभ अथवा लागत (हानि) का प्रभाव किन्हीं तीसरे व्यक्तियों पर पड़ता है, अर्थात् वे व्यक्ति जो उस वस्तु के तत्काल क्रेता या विक्रेता नहीं हैं।''** (Externalities occur when some of the benefits or costs associated with the production or consumption of a good 'spillover' on Third parties, *i.e.* or parties other than the immediate buyer or seller.

—McConnel)

उदाहरण—यदि कोई व्यक्ति अपने घर के बाहर एक बगीचा बनवाता है, जिसमें वह सुदर-सुंदर सुगंधयुक्त फूल लगवाता है। अब उसकी इस क्रिया का लाभ न केवल उसके पड़ोसी को बल्कि वहाँ से गुजरने वाले **(तीसरा पक्ष)** को भी सुगंध प्रदान करेगा। उसके बगीचा लगाने की इस प्रक्रिया को धनात्मक बाहरी प्रभाव (Positive Externality) कहा जाएगा। पड़ोसी या आने-जाने वाले इसके लिए कोई कीमत नहीं देते।

इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति अपने घर में एक जेनरेटर लगवाता है और बिजली चले जाने पर वह उस जेनरेटर को चलाता है, जब उस व्यक्ति को तो रोशनी मिल जाएगी, परंतु वह जेनरेटर शोर प्रदूषण (Noise Pollution) या वायु प्रदूषण (Air Polution) पैदा करेगा जिसका **ऋणात्मक बाहरी प्रभाव** (Negative Externality) पड़ोसी या अन्य व्यक्तियों को सहन करना पड़ेगा। जेनरेटर चालक इस ऋणात्मक बाहरी प्रभाव की कोई भी कीमत अपने पड़ोसी को नहीं देता। पड़ोसी द्वारा सहन करने वाले ऋणात्मक प्रभाव को ऋणात्मक बाहरी प्रभाव कहा जाएगा।

निर्णय-निर्माण (Decision-making) में ऐसे प्रभाव को शामिल नहीं करने से बाहरी प्रभाव पड़ता है और इसलिए यह बाजार विफलता का कारण बनता है। उदाहरण के लिए, कारखानों द्वारा फैलाए गए प्रदूषण से कारखाने के पड़ोस में रहने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। परंतु इसकी लागत को उत्पादन लागत के अनुमान में शामिल नहीं किया जाता। इसके फलस्वरूप अतिरिक्त या आधिक्य पूर्ति हो जाती है। यह ऋणात्मक या हानिकारक बाहरी प्रभाव है।

बाहरी प्रभाव की विस्तार से व्याख्या करने से पहले, यह बतला देना आवश्यक है कि **निजी लागत या लाभ** तथा सामाजिक लागत या लाभ में क्या अंतर है।

किसी भी समाज में, संसाधनों का आवंटन तब इष्टतम माना जाता है जब सामाजिक सीमांत लागत (Social Marginal Cost) सामाजिक सीमांत लाभ (Social Marginal Benefit) के बराबर हो।

स्वतंत्र बाजार संसाधनों का इष्टतम आवंटन तब करता है जब निजी लागतें सामाजिक लागतों के बराबर हों और निजी लाभ सामाजिक लाभों के बराबर हों। ऋणात्मक बाहरी प्रभाव तब होगा जब सामाजिक लागतें निजी लागतों से अधिक हैं और धनात्मक या लाभकारी बाहरी प्रभाव तब होंगे जब सामाजिक लाभ निजी लाभों से अधिक हो जाते हैं।

नोट

निजी तथा सामाजिक लागतें और लाभ

1. ***निजी लागत तथा लाभ*** *(Private Cost and Benefits) उत्पादन प्रक्रिया के दौरान एक उत्पादक मजदूरी, ब्याज तथा लगान के रूप में कुछ बंधे आर्थिक पुरस्कारों की प्राप्ति के लिए उत्पादक साधनों को काम पर लगाता है। उत्पादक के लिए यह निजी लागत है।* ***अतएव निजी लागत वह लागत है जो किसी उत्पादक को एक वस्तु के उत्पादन के लिए खर्च करनी पड़ती है।*** *जब तैयार या उत्पादित वस्तु उपभोक्ताओं द्वारा खरीदी और उपभोग की जाती है और तब जो उपयोगिता या लाभ वस्तु के उपभोग से प्राप्त करता है, उसे* ***निजी लाभ*** *कहा जाता है। इन निजी लागतों और निजी लाभों का सार्वजनिक/सामाजिक लागतों तथा सार्वजनिक/सामाजिक लाभों से भेद (Distinguish) किया जाता है।*
2. ***सामाजिक लागत*** *(Social Cost) जब कभी भी कोई आर्थिक क्रिया की जाती है, एक व्यक्ति या फर्म (जो उत्पादन क्रिया कर रही है) उत्पादन लागत के अतिरिक्त, समाज को भी इसकी कुछ लागत उठानी पड़ती है। यह सामाजिक लागत समाज के लिए की गई आर्थिक क्रिया की सामूहिक लागत है। सरल शब्दों में* ***सामाजिक लागत वह लागत है जो सारे समाज को किसी वस्तु के उत्पादन के लिए चुकानी पड़ती है।*** *उदाहरण के लिए, सड़क पर वाहनों के चलाने की सामाजिक लागत सड़क की टूट-फूट और प्रदूषण तथा भीड़ है जो वाहनों के कारण होता है।*
3. ***सामाजिक लाभ*** *(Social Benefit) सामाजिक लागत की तुलना में, सामाजिक लाभ से अभिप्राय उस लाभ से है जो किसी व्यक्ति की आर्थिक क्रिया के कारण सारे समाज को प्राप्त होता है। इसलिए एक आर्थिक क्रिया से जिस सीमा तक समाज को लाभ मिलता है या सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है, उसे सामाजिक लाभ कहते हैं।*

4.8 ऋणात्मक बाहरी प्रभाव (Negative Externality)

जब किसी व्यक्ति की उत्पादन अथवा उपभोग क्रिया द्वारा समाज के अन्य व्यक्तियों को हानि होती है तथा उन पर इस क्रिया का ऋणात्मक बाहरी प्रभाव पड़ता है और उन्हें इसकी कोई **क्षतिपूर्ति** (Compensation) भी नहीं मिलती, तो इसे ऋणात्मक बाहरी प्रभाव कहा जाएगा। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति नदी के समीप एक स्टील का कारखाना लगाता है और कारखाने के प्रदूषक तत्त्वों (Pollutants) को नदी में फेंकता है। स्पष्ट है कि तब उसकी इस क्रिया से नदी में मछली के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। अब प्रश्न यह है कि कारखाने का मालिक इस सामाजिक लागत (मछली उत्पादन की हानि के रूप में) को स्टील उत्पादन की अपनी लागत के अनुमान में शामिल करेगा। निश्चित रूप से नहीं। चित्र 4.4 यह व्यक्त करता है कि ऋणात्मक बाहरी प्रभाव किस प्रकार बाजार विफलता का कारण बनता है।

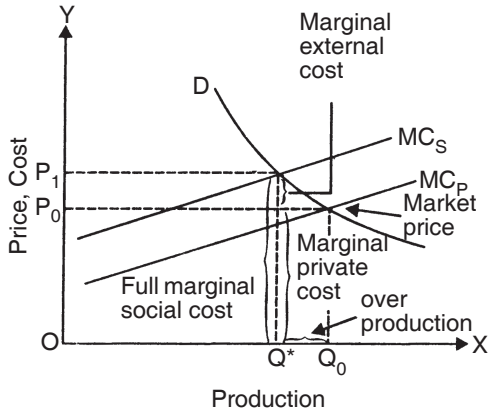

चित्र 4.4

नोट

चूँकि स्टील फर्म सामाजिक लागत को ध्यान में नहीं रखती, इसलिए बाजार कीमत और उत्पादन का निर्धारण सीमांत लागत वक्र तथा माँग वक्र की अंतर्क्रिया द्वारा होगा। बाजार संतुलन OP_0 कीमत पर OQ_0 उत्पादन द्वारा होगा। इस चित्र में MC_p निजी सीमांत लागत है। परंतु यह सही लागत को व्यक्त नहीं करती, क्योंकि यह स्टील उत्पादन की सामाजिक लागत को ध्यान में नहीं रखती। यदि सामाजिक लागत को गिना जाता है, तब सीमांत लागत वक्र ऊपर की ओर सीमांत बाहरी लागत (Marginal External Cost) तक सरक जाएगी। नई लागत वक्र MC_S है जो सीमांत बाहरी लागत को गणना में लेती है। इस सीमांत लागत वक्र के साथ इष्टतम उत्पादन OQ^* इकाइयाँ हैं।

अतएव इसका निष्कर्ष यह हुआ कि ऋणात्मक बाहरी प्रभाव अथवा हानिकारक बाहरी प्रभाव के मामले में, उत्पादन सामाजिक इष्टतम स्तर से ऊपर होगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सही/गलत छाँटिए

(State whether the following statements are True/False)–

9. स्वतंत्र बाजार अथवा पूर्णतया प्रतियोगी बाजार सामाजिक इष्टतम समाधान प्रस्तुत नहीं करते।
10. जब CPR का अत्यधिक प्रयोग होता है तब पोषण इसका परिणाम हो जाता है।
11. सार्वजनिक वस्तुएँ या 'सामुदायिक उपभोग वस्तुएँ' बाजार विफलता के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।
12. निजी लागत वह लागत है जो किसी उत्पादन को एक वस्तु के उत्पादक के लिए खर्च करनी पड़ती है।

4.9 धनात्मक बाहरी प्रभाव (Positive Externality)

जब किसी उत्पादक की उत्पादन क्रिया द्वारा समाज के अन्य व्यक्तियों को बिना किसी क्षतिपूर्ति के लाभ (Uncompensated Benefits) प्राप्त होता है, तो इसे उत्पादन का धनात्मक या सकारात्मक बाहरी प्रभाव कहते हैं। यह धनात्मक बाहरी प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूप से प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति का सेबों का बाग (Apple Orchid) है, इसके समीप ही एक शहद फार्म है। शहद की मक्खियों द्वारा इस सेब के बाग से जो शहद एकत्रित किया जाता है, उसका लाभ शहद-मक्खी पालने वाले किसान को होता है। परंतु सेब के बाग का मालिक इस लाभ को अपने सीमांत लाभ में शामिल नहीं करता है। अपने उत्पादन स्तर का निर्णय लेते समय वह केवल अपनी सीमांत लागत (MC) को सीमांत लाभ (Marginal Benefit) के बराबर करता है और शहद की मक्खी पालने वाले किसान के बाहरी सीमांत लाभ का विचार नहीं करता। तब इसके अनुरूप धनात्मक बाहरी प्रभाव की दृष्टि से जो सामाजिक रूप से वांछनीय है, उसके लिए उत्पादन का निम्न स्तर निश्चित किया जाएगा। इसको चित्र 4.5 द्वारा व्यक्त किया गया है।

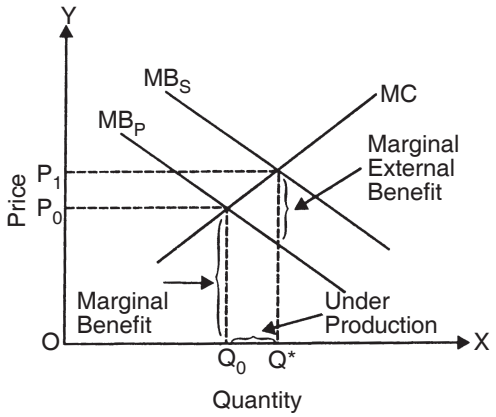

चित्र 4.5

चित्र 4.5 में OX-अक्ष पर सेबों की उत्पादित मात्रा को दिखाया गया है और OY-अक्ष कीमत को प्रकट करता है। OP_0 कीमत पर सेब की OQ_0 इकाई का उत्पादन किया जाता है, इसलिए सीमांत निजी लाभ सीमांत लागत के बराबर हैं। जब बाहरी लाभ को जोड़ा जाता है, MB_p सरक कर MB_s हो जाती है और इस प्रकार बाहरी प्रभाव का अंतरीकरण (Internalisation) के बाद सेबों का कुल उत्पादन OQ_0 से बढ़कर OQ* हो जाना चाहिए। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि धनात्मक **बाहरी प्रभाव के मामले में कुल उत्पादन सामाजिक इष्टतम उत्पादन से कम है** (Total output is less than the socially optimal output in case of positive externality)।

4.10 बाहरी प्रभाव तथा कोस सिद्धांत (Externalities and the Coase Theory)

बाहरी प्रभावों के कारण, उत्पादित अथवा उपभोग किए गए उत्पादन के अकुशल स्तर की समस्या (जिसकी व्याख्या ऊपर की गई है) का समाधान एक और ढंग से भी हो सकता है, वह यह है कि जो व्यक्ति बाहरी प्रभाव का कारण बनता या जो व्यक्ति इसकी जगह से प्रभावित होता है, उसे संपत्ति अधिकार (Property Rights) दे दिए या निर्धारित कर दिए जाएँ। यह विचार ही **कोस सिद्धांत का** आधार है। कोस सिद्धांत को विकसित करने का श्रेय प्रसिद्ध ब्रिटिश अर्थशास्त्री **रोलांड कोस** (Ronald Coase) को जाता है, जिसे सन् 1991 में अर्थशास्त्र का **'नोबल पुरस्कार'** मिला था। कोस सिद्धांत के अनुसार, **''यदि एक बाहरी प्रभाव के दो पक्ष–एक वह जो इसका कारण बनता है और दूसरा वह जो इससे प्रभावित होता है–आपस में सौदा या समझौता कर लें कि वे संसाधनों के कुशल प्रयोग का उत्पादन करेंगे।''** जब किसी वस्तु के संपत्ति के अधिकार ठीक से स्पष्ट या परिभाषित हो जाते हैं तब लाभ प्राप्त करने वाले (Beneficiary) तथा हानि उठाने वाले (Victim) के बीच सौदा या समझौता करना आसान हो जाता है और तब वस्तु के सामाजिक इष्टतम स्तर उत्पादन/उपभोग किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए दो छात्र A और B, एक कमरे में रहते हैं। छात्र A सिगरेट पीने वाला है और B नहीं। छात्र A को पढ़ते समय लगातार सिगरेट पीने की आदत है, जिसका छात्र B के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। चूँकि कमरे में हवा दोनों छात्रों की सामूहिक संपत्ति है, छात्र B छात्र A को सिगरेट पीने से रोक नहीं सकता। परंतु यदि कमरे के अंदर की हवा के संपत्ति अधिकार को इन दोनों में से किसी एक को दे दिया जाए तब A तथा B दोनों छात्रों की संतुष्टि का एक इष्टतम स्तर प्राप्त किया जा सकता है। पहला, यदि सिगरेट पीने वाले छात्र A को संपत्ति अधिकार दे दिया जाता है तब वह छात्र B को कह सकता है कि हवा में सिगरेट के धुएँ को कम करने के लिए उसे भुगतान, मान लीजिए 1 रु. प्रति सिगरेट देना पड़ेगा। अब छात्र B इस 1 रु. की राशि का भुगतान करके अपने लिए शुद्ध हवा प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत यदि छात्र B को संपत्ति अधिकार मिल जाता है तो वह छात्र A से कह सकता है कि यदि वह कमरे के अंदर सिगरेट पीना चाहता है तो वह इसका कुछ भुगतान करे (जैसे 1 रु. प्रति सिगरेट)। छात्र A यह निर्णय ले सकता है कि वह कितने सिगरेट पीए और छात्र B को कितने पैसे हरजाने के रूप में दे, छात्र B प्रदूषण के स्तर तथा मौद्रिक लाभ जो उसे छात्र A से मिलेगा, इन दोनों के बीच फैसला कर सकता है।

4.11 ऊँची समझौता (या लेन-देन) लागतें (High Transaction Costs)

कोस सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि सौदाकारी प्रक्रिया (Bargain Process) जो दो पक्षों/एजेंटों के बीच होती है उस पर कोई भी लेन-देन या समझौता नहीं आता। उदाहरण के लिए, ऊपर वाले सिगरेट पीने व न पीने वाले छात्रों के उदाहरण में, हमने यह मान लिया कि दोनों कमरे में बैठ कर आपस में वहीं स्वतंत्र रूप से कोई समझौता कर सकते हैं। मान लीजिए यदि दो एजेंट विभिन्न इलाकों में रहते हैं तब इन दोनों में आपस में बातचीत करने व संपर्क बनाने के लिए कुछ खर्च अवश्य करना पड़ सकता है जैसे टेलीफोन का प्रयोग, फैक्स मशीन का प्रयोग आदि। ऐसी अवस्था में इनमें से प्रत्येक एजेंट सौदा या समझौता (Deal) पूरा होने पर उससे शुद्ध लाभ-प्राप्ति का अनुमान अवश्य लगाएगा, तब कुल लाभ में से समझौता (लेन-देन) खर्च/लागत को घटा कर वह सौदे (Deal) के लिए तब राजी होगा जब उसे प्राप्त होने वाला शुद्ध लाभ धनात्मक है। अन्य शब्दों में, यदि सौदाकारी प्रक्रिया

नोट

में होने वाला समझौता (लेन-देन) खर्च अधिक है, तब हो सकता है कि दोनों या सारे पक्ष (Two or all Parties) सौदाकारी (Bargaining) के लिए राजी नहीं हो, बेशक संपत्ति अधिकार कितने भी स्पष्ट और परिभाषित (Well-defined) क्यों न हों।

अक्सर ऐसा देखा गया है कि बाहरी प्रभाव से अत्यधिक क्षति (जैसे वाहनों द्वारा फैलाए गए प्रदूषण ग्रीन हाउस गैस का छोड़ना) या लाभ (जैसे सड़कों का जाल फैलाना) में काफी अधिक समझौते (लेन-देन) लागतें शामिल होती हैं, इससे निजी एजेंट सौदाकारी के लिए आगे नहीं आते। ऐसी स्थितियों में किसी कुशल समाधान के लिए सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो जाती है।

ऐसा एक अन्य ऋणात्मक बाहरी प्रभाव प्रदूषण के कारण पर्यावरण को क्षति पहुँचना है, इसे रोकने के लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक होता है। तीन प्रकार के संयंत्र जिनका प्रयोग सरकार इन स्थितियों का सामना करने के लिए कर सकती है, वे हैं प्रत्यक्ष प्रदूषण नियंत्रण और धुआँ उत्सर्जित निस्सारण कर (Emissions Taxes) तथा परमिट देना। प्रत्येक संयंत्र की कुछ सीमाएँ हैं, इसलिए इनका प्रयोग कुछ विशेष हालातों के अंदर हो सकता है।

4.12 सारांश (Summary)

- पार्क, राष्ट्रीय सुरक्षा, सड़कें, पुल आदि गैर-प्रतिद्वंद्वी वस्तुएँ हैं। एक पार्क, जिसमें सभी आ-जा सकते हैं, का आनंद उन सभी व्यक्तियों को प्राप्त होता है जो वहाँ घूमने के लिए जाते हैं। इसी भाँति किसी भी देश के लोग राष्ट्रीय सुरक्षा प्रणाली द्वारा उपलब्ध कराई गई सुरक्षा (Security) से समान रूप से लाभान्वित होते हैं।

4.13 शब्दकोश (Keywords)

1. **संपत्ति अधिकार** (Property Rights)–संपत्ति का अधिकार
2. **असमित सूचना** (Asymmetric Information)–असंतुलित सूचना
3. **प्रतिद्वंद्वी** (Rivalrous)–प्रतिस्पर्धी
4. **वर्जित** (Excludable)–निषेध।

4.14 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वर्जित वस्तुएँ तथा बाजार विफलता से क्या तात्पर्य है?
2. 'सामूहिक संपत्ति संसाधन' पर एक टिप्पणी लिखिए।
3. बाहरी प्रभाव तथा बाजार विफलता से आप क्या समझते हैं?
4. ऋणात्मक बाहरी प्रभाव क्या है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

1. एकाधिकार	2. नीचे	3. सरकारी	4. (अ)
5. (ब)	6. (अ)	7. (स)	8. (अ)
9. सही	10. गलत	11. सही	12. सही।